ॐ

गौतम पृच्छा ।

सम्पादक –
पूज्यपाद गणाधीश्वर श्रीमद् हरिसागर जी
महाराज साहब के अन्तेवासी
मुनि मुक्तिसागर जी महाराज साहब के
सदुपदेश से

मुद्रक व प्रकाशक
श्री बीकानेर निवासी 'गणेशीलालजी भूरा'
प्रदत्त द्रव्य से
सद्धर्म्म प्रेस देहली में छपाया ।

श्री हरिसागर जैन पुस्तकालय
जाड़वास पु० लोहावट मारवाड़ ।

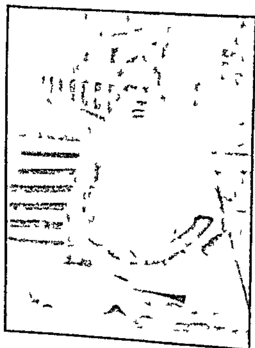
वीराब्द २४५८] अमूल्य [वि० सं० १९९०



सद्धर्म प्रेस

धारी बाजार, देहली दे दसी।





श्रीमान् १००८ श्री श्री श्री मुनिराज
तपस्वीजो श्रीमुक्तिसागरजी महाराज
जन्म १९४५ दीक्षा १९८५।

सद्धर्म प्रस दहली में छपा।

किञ्चिद्वक्तव्य

जैन साहित्य में सैंकड़ों नहीं हजारों जैन ग्रन्थ ऐसे हैं, जिनके अनुवाद हिन्दी भाषामें होने की बहुत ही आवश्यकता है। ऐसे ग्रन्थों में से गौतम पृच्छा भी एक है परमात्मा महावीरदेव के प्रधान शिष्य श्रीगौतम स्वामि ने महावीर देव को पूछे हुए प्रश्न और भगवान ने दिये हुये उनके उत्तर—यही इस ग्रन्थ का विषय है।

संसारमें जीवों की स्थितियाँ भिन्न २ प्रकार की देखने में आती है। कोई राजा है, तो कोई रंक है कोई सुखी है। तो कोई दु खी है। कोई काना है तो कोई कुबड़ा है। कोई लूला है तो कोई लंगड़ा है। कोई बधिर है तो कोई मूक है इसी प्रकार सभी जीव सुख दुख का अनुभव कर रहे हैं यह सुख दु ख किन कर्मों के उदय से प्राप्त होता है। अर्थात् कैसे कर्म के करने से जीव कैसे फल पाता है। यह जानने के लिए यह पुस्तक बहुत उपयोगी है। विषय की पुष्टि के लिए इसके कर्त्ता आचार्य ने प्रत्येक प्रश्नोत्तर के ऊपर एक २ दृष्टान्त भी दिया है जिससे पढ़ने वालों को अधिक आनन्द मिलने के साथ विषय हृदयङ्गम भी हो जाता है।

इस ग्रन्थ मे प्रारम्भ की ग्यारह गाथाओं में प्रश्नों के नाम मात्र दिखलाये गये हैं। तदनन्तर पनरहवीं गाथासे उसके उत्तर प्रारम्भ किये हैं। पर्यन्त ६४ गाथाओं में ग्रन्थ की समाप्ति की गई है।

हमारे पास यह कहने का कुछ भी साधन नहीं है। कि इस ग्रन्थ के कर्ता कौन आचार्य हैं। परन्तु इनकी रचना परसे इतना अवश्य कह सकते हैं। कि इसके कर्ता कोई प्राचीन जैनाचार्य है। मूल और इसकी संस्कृत टीका को जाम नगर वाले पंडित हीरालाल हंसराज ने छापकर प्रकाशित किया है। आज हम हमारे भाई भाई भाइयों के कर कमलों में इसका हिन्दी अनुवाद सादर समर्पित करते हैं। हमारी यह भी आशा है कि हम इस पुस्तकालय द्वारा हिन्दी संसार के उपयोगी और भी अन्यान्य ग्रन्थ प्रकाशित करें। शासन देव हमारी इच्छा पूर्ण करावें। यही अभ्यर्थना!

मिति आषाढ़ शुक्ला ५ मी
वीर सवत् २४५९
मु० देहली।

अनुवादक
मुनि मुक्तिसागर जी

गौतम पृच्छा



श्रीयुत गणेशीलाल जी भूरा

मु० श्री बीकानेर, निवासी।

सदम प्रेम देहली में छपा।

श्रीगौतमगुरुभ्यो नमः ।

गौतमपृच्छा.

मङ्गलाचरण

नत्वा वीरजिनं बालावबोधो लिख्यते मया ।
श्रीमद्गौतमपृच्छाया वाचनार्थं विशेषतः ॥१॥
श्रीसोमसुन्दरश्रीमुनिसुन्दरसद्विशालराजेन्द्राः ।
श्रीसोमदेवगुरवोजयन्ति जिनकल्पवृक्षसमाः ॥२॥

नमिऊण तित्थनाहं जाणंतो तहय गोयमो भयवं ।
अबुहाण बोहणत्थं धम्माधम्मं फलं पुच्छे ॥१॥

भावार्थ —तीर्थङ्कर नाथ श्रीमहावीर भगवान्को नमस्कार करके, स्वयं विज्ञ होनेपर भी श्रीगौतमस्वामी, अबुधजीवों के बोधार्थ श्रीभगवान से धर्माधर्म का फल पूछते हैं।

यद्यपि श्रीगौतमस्वामी स्वयं चार ज्ञानके धारक और

श्रुतकेवली होनेसे श्रुतज्ञानके बलसे असंख्य भव सम्बन्धी सन्देहको स्वयं जानते थे, तथापि इस प्रकार प्रश्न करने का उनका उद्देश्य केवल यही था कि-अबोध जीवों को बोध होवे ।

अब दस गाथाओंके द्वारा अड़तालीस प्रश्नोंके नाम कहते हैं ।

भयवं सुच्चिय नरयं सुच्चिय जीवो पयाइ पुणसग्ग
सुच्चियकिं तिरिएसु सुच्चिय किमाणुसो होइ
सुच्चिय जीवो पुरिसो सुच्चिय इत्थी नपुंसओ
अप्पाऊ दीहाऊ होइ अभोगी सभोगी य ॥
केण व सुहवो जायइ केण व कम्मेण दूहवो
केण व मेहाजुत्तो दुम्मेहो कह नरो होइ ॥
कह पंडिउत्ति पुरिसो केण व कम्मेण होइ मुक्खत्त
कहधीरू कहभीरू कहविज्जा निप्फला सफला॥
केणविणस्सइअत्थोकहवासमिलइकहथिरोहोइ
पुत्तो केण न जीवइ बहुपुत्तो केण वा

बुधो केण नरो केण व भुत्त न जिज्जइ नरस्स ।
णव कुट्टी कुज्जो कम्मेण य केण दासत्त ॥७॥

ण दरिद्दो पुरिसो केण कम्मेणईसरो होइ ।
ण व रोगी जायइ रोगविहूणो हवइ केण ॥८॥

ह हीणगो मूओ केण कम्मेण टूंटओ पगू ।
ण सुरूवो जायइ रोगविहूणो हवइ केण ॥९॥

णवि बहुवेयणत्तो केण व कम्मेण वेयणविमुक्को
र्चिदिओवि होइ केणवि एगिंदिओ होइ ॥१०॥

सारोविकहथिरोकेणविकम्मेण होइ संखित्तो ।
ह ससार तरिउ सिद्धिपुरं पावइ पुरिसो॥ ११॥

भावार्थ – हे भगवन् ! (सुचिय नरय) १ सएव अर्थात् वही जीव नरक में कैसे जावे ? फिर २ वही जीव स्वर्ग में कैसे जावे ? पुन तीन वही जीव तिर्यंच कैसे होवे ? और ४ वही जीव मनुष्य जन्म भी कैसे पा सकता है ? (२)

भगवन्—५ वही जीव पुरुष कैसे होता है ? ६ वही जीव स्त्री कैसे होता है ? ७ वही जीव नपुंसक कैसे है ? ८ वही जीव अल्पायुषी कैसे होवे ? वही दीर्घ आयुष्यवाला कैसे होवे ? १० वही जीव रहित कैसे होवे ? और ११ वही जीव भाग भागने कैसे होवे ? (३)

हे भगवन् ! १२ किस कर्मके योग से जीव भाग्यवत होसकता है ? १३ किस कर्मके उदयसे जीव दु होता है ? १४ किस कर्मके योगसे जीव (मेधायु बुद्धिमान् होता है ? १५ और किस कर्म के योगसे हीनबुद्धिवाला होता है ? (४)

१६ किस कर्मके योगसे पुरुष पंडित होता १७ किस कर्मके योग से मूर्ख होता है ? १८ किस योगसे धीर—साहसिक होता है ? १९ किस कर्मके से भीरु होता है ? २० किस कर्मके योगसे प्राप्त की विद्या निष्फल होती है ? और २१ किस कर्मके प्राप्त की हुई विद्या सफल होती है ? (५)

हे भगवन् ! २२ किस कर्म के योगसे संचित

ली जाती है ? २३ किस कर्म के योगसे अतुल लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है ? २४ किस कर्म के योग से पुत्र जीवित नहीं रहता ? २५ किस कर्म के योगसे अनेक पुत्र होते हैं ? और २६ किस कर्म के योग से जीव बधिर होता है ? (६)

२७ किस कर्म के योगसे जीव जन्मसे अन्ध होता है ? २८ किस कर्म के योगसे जीव को खाया हुआ अन्न हजम नहीं होता ? अर्थात् बदहजमी—अजीर्ण होता है ? २९ किस कर्म के उदयसे जीव कुष्ठ रोगी होता है ? ३० किस कर्म के उदय से जीव कुबड़ा होता है ? और ३१ किस कर्मके उदयसे जीव दासत्व पाता है ? (७)

? ३२ किस कर्मके योगसे जीव दरिद्री होता है ? ३३ और किस कर्मके उदयसे जीव धनवान् होता है ? और ३४ किस कर्मके योगसे जीव रोगी होता है ? और ३५ किस कर्मके योगसे जीव निरोगी होता है ? (८)

३६ किस कर्मके योगसे जीव हीन अंगवाला होता है ? ३७ किस कर्मके उदयसे जीव गूंगा व बोबड़ा होता है ? ३८ किस कर्मके उदयसे जीव ठूंठा होता है ? ३९

किस कर्मके उदयसे जीव पगु होता है ? २० किस कर्म के उदय से बहुत रूपवन्त होता है ? एव २१ किस कर्म के उदय से जीव हीनरूपवाला याने कुरूप होता है ? (९)

२२ किस कर्मके योगसे जीव अ यन्त वेदना से पीडित होकर रहता है ? २३ किस कर्म से जीव वेदना रहित होकर शातामें रहता है ? २४ किस कर्मके योग से जीव पचेंद्रियत्व पाता है ? और २५ किस कर्म के योगसे जीव एकेन्द्रियत्व पाता है ? (१०)

२६ किस कर्मके योगसे जीव बहुत काल पर्यंत स सारमें स्थिर होकर रहता है ? २७ किस कर्मके योगमें पुरुप स सारमें स्वल्प काल रहता है ? एव २८ किस कर्मके योगस जीव स सार समुद्र तैर कर मोक्ष नगर प्रति जाता है ? (११)

उपर्युक्त ४८ प्रश्नों को पूछ कर और उत्तर की जिज्ञासा रखते हुए फिर श्रीगौतम स्वामी कहते हैं —

सव्वजगजीववघव सव्वन्नू सव्वदसण मुणिद ।
सव्व साहुसु भयव कस्स य कम्मस्स फलमेय॥१२

भावार्थ — हे भगवन् ! जगत्में रहने वाले सभी जीवों के आप बंधव हैं, आप सर्वज्ञ हैं, अर्थात् सर्व वस्तुओं के ज्ञाता हैं, सच्चदसण अर्थात् केवलज्ञान के द्वारा सर्व वस्तुओं क देखने वाले हैं, तथा सर्व मुनियों में इन्द्र हैं, अत मैंने जो जो प्रश्न किये हैं अर्थात् किन किन कर्मों के उदयसे उपर्युक्त फल मिलते हैं । उस विषय की सर्व बातें आप फरमावें (१२)

व पुट्ठो भयव तियसिंदनरिंदनमियपयकमलो
सह साहिउं पयत्तो वीरो महुराइ वाणीए ॥१३॥

भावार्थ —इस प्रकार श्रीगौतमस्वामी के पूछने पर, त्रिदश जो देवता उनके इन्द्र और नरिंद्र याने राजा ये सब जिनके पादकमलमें नमते हैं, ऐसे श्रीवीरभगवान मधुरवाणी के द्वारा प्रश्नों के उत्तर देने के लिए प्रवृत्त हुए (१३)

परमेश्वर की वानी श्रवण करते हुए जीव को कष्ट, क्षुधा या तृषा वगैरह मालूम नहीं होते । इस पर किसी वृद्धा स्त्री की कथा कही जाती है —

" किसी गाँव में एक वणिक रहता था, उसके घरमें

एक डोकरी थी, जोकि घरका दासत्व करती थी । किसी समय वह डोकरी ईधन लाने के लिए वनमें गई । मध्यान्ह के समय वह भूख और तृषासे पीडित हुई, जिससे थोड़ा ईधन लेकर वापिस लौट आई । उसे देख कर सेठ ने कहा — रे ! डोकरी ! आज थाडा ईधन क्यों लाई ? जा, विशेष ईधन ले आ यह श्रवण कर वह विचारी भूखी प्यासी फिर वनमें गई । दुपहर का समय था, जिससे लू और ताप का सहन करती हुई काष्ट की भारी उठा कर चली । मार्ग में एक काष्ट नीचे गिर गया, उसको उठाने लगी, उतने में श्रीवीरप्रभु की वानी सुनने में आई । सुनते ही वह वहीं खड़ी रही, और क्षुधा, तृषा व ताप की वेदना को भूल गई । एवं धर्म देशना सुन कर अतिहर्षित होती हुई शाम को घर आई । घर आने में विलम्ब होने का कारण जब सेठने उसको पूछा, तब उनके सामने यथातथ्य बात कह सुनाई । जब सेठने भी श्रीमहावीरप्रभु की देशना श्रवण की । तदनन्तर उस स्थविरा (डोकरी) में धर्म का गुण जान कर उसका बहुत मान देने लगा । परिणाम में वह डाकरी सुखी हुई । ”

इस प्रकार प्रभुकी वानी को श्रवण करनेसे कष्ट नष्ट हो जाते हैं। कहा है —

दोहा

जिनवर वाणी जे सुणे नरनारी सुविहाण।
सूक्षम बादर जीविनी रक्षा करे सुजाण ॥ १ ॥

अब श्रीवीरभगवान कहते है, कि — 'हे गौतम ! जो जो प्रश्न तूने मुझसे पूछे है, उन सब का सामान्य उत्तर यह है कि जीव ये सब बातें कर्म के वशीभूत होकर पाता है, उन कर्मो का स्वरूप में तुझको कहता हू, सो ध्यान देकर श्रवण कर।' ऐसा कह कर भगवान् अब ४८ प्रश्नों के उत्तर कहते हैं। इनमें प्रथम जीव किस कर्म के योगसे नरक गति में जाता है। इसका उत्तर तीन गाथाओं के द्वारा देते है।

जे घायइ सत्ताइ अलिय जपेइ परधणं हरइ।
परदारं चिय वच्चइ बहुपावपरिग्गहासत्तो ॥१५॥
चंडोमाणी थिट्ठोमायावी निट्ठुरो खरोपावो।
पिसुणो संगहसीलो साहूणं निंदओअहमो॥१६॥

आलप्पालपयपो सुदुट्ठवुद्धो य जो कयग्घो य।
बहुदुक्खसोगपउरोमरिउ नरयम्मिसो याइ॥१७॥

अर्थात् —जो १ जीवोंकी घात करे—जीवहिंसा करे, २ अलीक यानि झूठ वचन बोले, ३ परद्रव्य का हरण करे अर्थात् चोरी करे, ४ परस्त्रीगमन करे, एवं जो ५ बहु पापपरिग्रहमें आसक्त होवे। इन पाँच प्रकार के खराब कृत्यों को करने वाला जीव नरकका आयुष्य बाँधता है (१५) ६ जो चंडा अर्थात् क्रोधी हो, ७ माणी यानि मानी-अहंकारी हो थिद्रो धट्ट अर्थात् किसीको नमे नहीं, ८ मायावीकपटी होवे, ९ निट्ठुरो निष्ठुर अर्थात् कठोर चित्तवाला हो, १० खर अर्थात् रौद्रस्वभाववाला हो, ११ पावा अर्थात् पापी हो, १२ चुगलखोर दुर्जनता परायण हो, १३ अतिपापकेहेतुभूत वस्तुओंका संग्रहशील हो, १४ साधु की निंदा करे, उपलक्षण से साधुओंका प्रत्यनीक हो, १५ अधम नीच स्वभाव वाला हो, १६ असंबद्ध वचन बोलता हो दुष्ट बुद्धिवाला हो, १७ तथा जो कृतघ्न यानि किये हुए उपकार को न माने, ऐसा जीव मृत्यु पाकर बहुत दुःख और शोकसे भरी हुई नरकगतिमें जाता है (१७)

यहाँ प्रथम हिंसा आश्रयी अष्टम सुभूम नामक चक्रवर्ती अत्यंत पापकर्म क करनेसे नरकगति में गये, उसकी कथा कहते हैं —

"वसंतपुरी नगरीके वनमें एक आश्रममें जमदग्नि नामक एक तापस रहता था। वह बहुत कष्ट सहन तपश्चर्या करता था। और निरंतर शिव का ध्यान हृदय में धरता था। जिसके कारण वह तापस सर्वत्र प्रसिद्ध हुआ। किसी समय देवलोक में एक धन्वंतरी नामक देव, कि जो तापसभक्त मिथ्यादृष्टि था, वह, और दूसरा विश्वानर नामक देव कि जो सम्यग्दृष्टि था, वे दोनों मित्रदेव अन्योन्य अपने अपने अङ्गीकार किये हुए धर्म की प्रशंसा करने लगे। एकने कहा कि-' जैन धर्म समान कोई धर्म नहीं है ' जब दूसरे ने कहा कि 'शिव धर्म के समान कोई धर्म नहीं है '। पश्चात् दोनों देवोंने ऐसा निश्चय किया कि अपने दोनों धर्मों के गुरुओं की परीक्षा करे। उस समय जैनधर्मानुयायी देव ने कहा कि श्रीजैनधर्म में जो जघन्य नवदीक्षित गुरु हो, उसकी परीक्षा की जावे और शैवधर्म में जो चिरंतनकालका 'महातपस्वी गुरु हो, उसकी परीक्षा की जावे। जिस पर से अच्छे बुरे की प-

हिचान शीघ्र हो जायगी। इस प्रकार निश्चय करके वे दोनों पृथ्वीतल पर आये।

उस समय त्रिपिता नगरीका पद्मरथ राजा राज्य छोड़ कर चंपा नगरीमें श्रीवासुपूज्य स्वामी के पास दीक्षा लेकर तुरंत ही वापिस लौट रहा था। उस रास्ते में आते हुए देव ने प्रथम उसकी परीक्षा करने के लिए अनेक प्रकारके मिष्टान्न खान-पानी भोजन बना कर देवों ने उसको बतलाये। वह नवदीक्षित मुनि भूख व प्यास से पीड़ित था, तथापि उसने उन मिष्टान्नको दूषित जान कर नहीं लिया। और अपने मार्ग से चलायमान नहीं हुए। तब उन देवोंने एक रास्ते में कंटक व कंकरों का रास्ता बिछाये। और दूसरे रास्तेमें अनेक छोटे छोटे मेंढकों की रचना की। तब वे महात्मा मेंढकों से आच्छादित मार्ग को छोड़ कर जिस रास्ते में कंटक कंकर बिछाये हुए थे, उस रास्ते में चलने लगे। यद्यपि कंटक के योग से मुनिके पैरोंमें से रक्त की धारा बहती थी तथापि वह क्षुभित नहीं हुए। तदनन्तर तीसरी परीक्षामें उस साधु के समक्ष देवों ने गीत व नृत्य किये, स्त्रियों का रूप बनाकर उसको क्षुब्ध बनानेके लिए बहुत कुछ परिश्रम

किया, तथापि वे मोहजित् मुनि मनसे भी किंचिन्मात्र विचलित नहीं हुए। चौथी परीक्षा करने के निमित्त उन देवोंने निमित्तिया के रूप धारण किये और उस मुनि के समीप आकर कहने लगे कि—'हे महात्मन्! हम निमित्तशास्त्रके बलसे कहते हैं-कि तुम्हारा आयुष्य बहुत बाकी है, अत इस समय यौवनावस्थामें भुक्तभोगी हो कर फिर वृद्धावस्थामें चारित्र ले कर तप करना।' यह श्रवण कर साधु जी कहने लगे कि—'हे सिद्ध पुरुष! यदि मेरा आयुष्य बहुत लम्बा होगा तो मैं दीर्घकालपर्यंत चारित्र पालूगा, जिससे कर्मों की अधिक तर निर्जरा होगी। एक और भी बात है-लघुवय में तप भी हो सकेगा, परन्तु जरावस्था प्राप्त होने के बाद विशेष तप नहीं हो सकेगा।' उस साधुकी इस प्रकार दृढ़ता देखकर दोनों देव हर्षित हुए और जैनधर्म की प्रशंसा कर आगे चले।

आगे चलते हुए उन्होंने, बनमें एक दीर्घकाल तपस्वी लम्बी जटावाले, एकान्त स्थानमें ध्यानमें रहे हुए जमदग्नि नामक तापस को देखा। इसकी परीक्षा करनेके लिये वे दोनों देव चीडियोंका रूप धारण कर उस ऋ-

पिकी दाढीके बाल्नमें घोंसला बाँध कर रहे। इनमें एक था नर और दूसरी थी मादा। नर, मादाके प्रति मनु ष्योंकी भाषामें कहने लगा—'मैं हिमवत पर्वतको हो आऊ, वहां तक तूने यहाँ रहना।' मादाने (चीडीने) अपने पति की आज्ञा का निरादर करते हुए कहा—'तू वहाँ जा कर दूसरी चीडी के साथ आसक्त हो जाय तो मेरी क्या दशा हो?' तब वह पक्षी बोला कि—'मैं वापिस न आऊ, तो मेरे सिर गौहत्या व स्त्रीहत्या का पाप हो।' इत्यादि बातें कहीं, परन्तु चीडीने नहीं मानी और कहने लगी—'यदि तू किसी चीडियाके साथ यारी करे, तो इस ऋषिने जितना पाप किया है, वह सब पाप तेरे सिर पर पडे। इस प्रकार की प्रतिज्ञा करले, तो मैं तेरे को जाने दू।'

इस बात को श्रवण करते ही जमदग्नि तापसन क्रोधित होकर अपनी दाढी में हाथ डाला, और उन दोनों का पकड़ लिये। फिर वह कहन लगा 'अरे! मैं इतने कठिन तप करके पापोंको नाश कर रहा हू, जिस पर भी तुम मुझे पापी कहते हो?' चीडियोंने दिया 'हे ऋषि! आप क्रोध मत कीजिये और

अपना शास्त्र देखिये। उसमे कहा है कि -

अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च।
तस्मात् पुत्रमुखंदृष्ट्वास्वर्गंगच्छन्तिमानवा ॥१॥

जिसको पुत्र नहीं है, उसकी गति (सद्गति) नहीं होती, वह स्वर्ग मे नहीं जा सकता। आप भी अपुत्र हैं, जिससे आपकी भी सद्गति कहा है।' इस बात को ऋषिने सत्य मानलिया और विचार करने लगा कि-किसी स्त्रीके साथ पाणिग्रहण करके पुत्र उत्पन्न करू। यह सोच कर तपका त्याग कर दिया और उसने कौष्टिक नगर में जितशत्रु राजा, जिसके यहा अनेक पुत्रिया थी उसके पास जाने का विचार किया। ऋषि मनको इस प्रकार चलायमान देख, जो मिथ्यात्वी देव था, उसको खेद हुआ। और उसने तुर्त ही श्रावक धर्म अङ्गीकार किया।

उधर तापस राजा के पास कन्या की याचना करने को गया। तापस को देख राजा आसनसे उठ खड़ा हुआ! और कुछ सामने भी आया। जब ऋषिने कन्या की याचना की, तब राजाने उसको कहा कि ' मेरी सौ

पुत्रियों में से जो आपकी वांछा कर, उसको आप अंगीकार कर।' यह श्रवण कर ऋषि भी अन्तउरमें गया। वहां जाते ही सभी राजकन्याएं उसे जटाधारी, दुर्बल, भीख मंगा, श्वेतकेशवाला, व अमस्कारी शरीरवाला देख कर उस पर थूकने लगीं। ऋषि को बड़ा क्रोध हुआ। उस क्रोध के मारे अपने तपके प्रभावसे उन सब कन्याओं को कुबड़ी व कुरूपिणी बना दी और पीछे लौटा। उस समय घरके चौकमें धूलमें खेलती हुई एक राजकन्या को उसने देखा। उसके सामने हाथमें बीजोरा फल रख कर कहने लगा—' हे रेणुका! तू मुझको चाहती है। उस समय उस लड़कीने बीजोरा की तरफ अपना हाथ लम्बाया। यह देख ऋषिने सोचा कि यह—जरूर मुझे चाहती है। ऐसे सोच उसे उठा कर ले गया। राजा भी शाप के भयसे कम्पने लगा और सहस्र गाकुल तथा दास दासी सहित वह कन्या ऋषि को अर्पण की। ऋषिने अन्य सब कन्याओं को अपनी सालीओं के स्नेहस तपके प्रभाव से उनका कूबड़ापन दूर कर दिया। बस, ऋषिने अपनी तपस्या नष्ट कर दी। अब तो वह उस कन्या को अपने आश्रमस्थानमें ले गया, जोकि वनमें बनाया गया था। वहीं पर उसका लालन पालन करने लगा।

कन्या यौवनावस्था को प्राप्त हुई, और जब वह अपने रूप-लावण्य से ऋषि के चित्त को आकर्षित करने लगी, तब ऋषिने अग्नि की साक्षी से उसके साथ पाणिग्रहण किया। ऋतुस्नानके उसे कहने लगा कि—' मैं अपने मंत्र के द्वारा सिद्ध करके एक चरू तेरे को देता हूं जिसके प्रभाव से अत्यन्त सुन्दर एक ब्राह्मण पुत्र तेरे को होगा।' रेणुकाने ऋषि से कहा —' मन्त्र के द्वारा एक चरू नहीं किन्तु दो चरू सिद्ध कर देना, जिससे एक ब्राह्मणपुत्र हो और दूसरा क्षत्रियपुत्र हो। क्योंकि—क्षत्रियपुत्र मेरी बहिन, जो हस्तिनापुर में ब्याही हुई है, उसको दूंगी।' तत्पश्चात् ऋषिने दो चरू मन्त्र के द्वारा सिद्ध कर स्त्री को दिये। तब रेणुका विचार करने लगी कि—यदि मेरा पुत्र क्षत्रिय महा शूरवीर होगा, तो इस बनवास के कष्ट से मेरी मुक्ति होगी। इस आशय से क्षत्रिय औषध तो स्वयं ही खा गई और ब्राह्मणी औषध अपनी बहिन के लिए हस्तिनापुर भेज दी। वह उसने खाई।

ऋषि की इस पत्नी का नाम रेणुका इसलिये रक्खा गया कि वह धूलि में क्रीडा करती थी। उसको राम

नामक एक पुत्र हुआ। किसी समय अतिसार रोग से पीड़ित एक विद्याधर इसके आश्रममें आया। यद्यपि यह विद्याधर था, परन्तु अतिसारके प्रभावसे आकाशगामिनी विद्या को भूल गया था। ऋषिपुत्र रामने इस विद्याधर की औषधादिक द्वारा अनेक प्रकार से सार—सम्हाल की। जिसमे उस विद्याधरने हर्षित होकर राम को परशु नामक विद्या प्रदान की। रामने इस विद्या को साध लिया। इस विद्या के योगसे वह परशुरामके नामसे जगत् में विख्यात हुआ और देवाधिष्ठित कुठार शस्त्र हाथमें लेकर घूमने लगे।

किसी समय जमदग्निकी आज्ञा लेकर रेणुका अपनी बहिन को मिलने के लिए हस्तिनापुर गई। हस्तिनापुराधीश अनन्तवीर्य राजा रेणुका को अपनी साली जान कर उसकी हँसी-मसकरी करने लगा, और रेणुका का अत्यन्त सुन्दर रूप देख कामातुर होकर निरंकुशता से रेणुकाके साथ विषय सेवन करने लगा। जिसके कारण रेणुका का एक और भी पुत्र हुआ। तदनन्तर जमदग्नि पुत्र सहित रेणुका को अपने आश्रम में ले आया। उसे पुत्र सहित देख कर परशुराम ने क्रोधावेश में आकर परशु के द्वारा

शीघ्र अपनी माता व भाई के मस्तक काट डाले। यह बात श्रवण कर अनन्तवीर्य राजा क्रोधातुर हो कर सेना सहित जमदग्निके आश्रममें आया और इस आश्रम को जला कर नष्ट कर दिया एवं सर्व तापसों को भी त्रास देने लगा। उन तापसों की चिल्लाहट सुनकर परशुराम वहाँ पर आया। उसने अनन्तवीर्य को मार डाला। अमात्यगण ने यह वृत्तांत जानकर अनन्तवीर्य के पुत्र कृतवीर्य को हस्तिनापुरके तख्त पर बैठाया। उसने एक दिन अपनी माताके मुखसे उपर्युक्त वृत्तान्त सुना, तब वह अपने पिता का वैर लेने के लिए आश्रममें गया और जमदग्नि ऋषि को मार डाला। यह हाल जानकर परशुराम हस्तिनापुर में आया और कृतवीर्य को मार कर खुद राज्यासन पर बैठ गया। उस समय कृतवीर्य की तारा नामक राणी, जो कि सगर्भा थी, परशुराम के भय से वन में भाग गई। उस पर किसी तापसने अनुकम्पा ला कर अपने आश्रम की गुफामें छुपा रखी। वहाँ उसने चौदह स्वप्न करके सूचित पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम सुभूम रक्खा गया।

अब परशुरामने क्षत्रियों पर क्रोध करके पुन पुन

नामक एक पुत्र हुआ। किसी समय अतिसार रोग से पीड़ित एक विद्याधर इसके आश्रममें आया। यद्यपि वह विद्याधर था, परन्तु अतिसारके प्रभावसे आकाशगामिनी विद्या को भूल गया था। ऋषिपुत्र रामने इस विद्याधर की औषधादिक द्वारा अनेक प्रकार से सार—सम्हाल की। जिससे उस विद्याधरने हर्षित होकर राम को परशु नामक विद्या प्रदान की। रामने इस विद्या को साध लिया। इस विद्या के योगसे वह परशुरामके नामसे जगत् में विख्यात हुआ और देवाधिष्ठित कुठार शस्त्र हाथमें लेकर घूमने लगे।

किसी समय जमदग्निकी आज्ञा लेकर रेणुका अपनी बहिन को मिलने के लिए हस्तिनापुर गई। हस्तिनापुरा धीश अनन्तवीर्य राजा रेणुका को अपनी साली जान कर उसकी हाँसी मस्करी करने लगा, और रेणुका का अत्यन्त सुन्दर रूप देख कामातुर होकर निरकुशता से रेणुकाके साथ विषय सेवन करने लगा। जिसके कारण रेणुका का एक और भी पुत्र हुआ। तदनन्तर जमदग्नि पुत्र सहित रेणुका को अपने आश्रम में ले आया। उसे पुत्र सहित देख कर परशुराम ने क्रोधावेश में आकर परशु के द्वारा

किसी समय वैताढ्य पर्वत पर मेघनाद नामक एक विद्याधरने अपनी पुत्रीका पति कौन होगा ? इस विषय का प्रश्न निमित्तियासे पूछा। निमित्तिया ने सुभूम का नाम व पता बता कर उसके सम्बन्ध में कथनीय सब कथा कह सुनाई। तब वह विद्याधर अपनी पुत्री को लेकर सुभूमके आश्रम में आया और अपनी पुत्री की सुभूम के साथ शादी कर दी। और वह विद्याधर भी सुभूम का सेवक बन कर उसी के साथ रहने लगा।

एक दफे सुभूम ने अपनी माता से पूछा —' हे माता ! पृथिवी क्या इतनी ही है ? ' तब माताने कहा कि पृथिवी तो बहुत बड़ी है। उसमें एक माखी की पाँव जितन स्थान में यह आश्रम है। जिसमें परशुराम क भय से निवास कर रहे हैं। अपनी खास वासभूमी तो हस्तिना पुर है।' इत्यादि सर्व वृत्तान्त कह सुनाया। जिसको श्रवण कर सुभूम क्रोधसे धमधमायमान हो उठा। वह गुफामें स बाहर निकल कर मेघनाद विद्याधर सहित हस्तिनापुरमें जहाँ दानशाला है, वहाँ गया। उसकी दृष्टि उस थाल पर पड़ते ही क्षत्रियों की डाढों का थाल खीर रूप हो गया। उसको वह जीमने लगा, यह देख

सात दफे पृथिवी को नि क्षत्री (क्षत्रिय रहित) किया । जहाँ कहीं क्षत्रिय देखने में आते वहाँ परशुरामका परशु (कुठार) जाज्वल्यमान हो उठती थी । किसी समय जिस स्थान में तारा राणी गुप्तरीत्या बैठी हुई थी, उस आश्रममें आते हुए परशुराम का कुठार जाज्वल्यमान हुआ । इस समय परशुरामने तापसों से यह पूछा कि –' यहाँ कोई क्षत्रिय है क्या ? ' । तापस बोले कि 'पूर्व गृहस्थावास में हम ही सब क्षत्रिय थे ' परशुरामने उन्हें ऋषि जानकर छोड़ दिये । इस प्रकार परशुरामने सर्व क्षत्रियों का संहार किया और उनकी दाढाओं से एक थाल भरा । किसी समय परशुरामने किसी निमित्तियासे गुप्त रीत्या यह प्रश्न किया कि ' मेरी मृत्यु किस प्रकार होगी ? तब निमित्तियाने उत्तर दिया कि ' जिसके देखने से ये दाढाएं क्षीर रूप हो जायेंगी और उस क्षीरका भोजन सिंहासन पर बैठ कर जो करेगा, उसके हाथसे तेरी मृत्यु होगी ' ।

उक्त बात को श्रवण कर परशुरामने एक दानशाला स्थापित की और उसके आगे एक सिंहासन बनवा कर उन दाढाओं का थाल सिंहासन के ऊपर रखवाया ।

अब दूसरे प्रश्नका उत्तर एक गाथा के द्वारा कहते हैं।

तवसंजमदाणरओ पयईए भद्दओ किवालू य।
गुरुवयणरओ निच्चं मरिउ देवेसुसो जायइ॥१८॥

अर्थात —जो जीव तप, संयम और दानमें रक्त होवे, सहज प्रकृति से ही भद्रक परिणामी होवे, कृपालु दयावन्त होवे, गुरुके वचनमें निरन्तर रक्त होवे और हमेशा गुरु की आज्ञा का पालन करे, वह जीव मर कर देवलोक में उत्पन्न होता है॥ १८॥

जैसे आनन्द श्रावकने तपस्या की, प्रतिमा अङ्गीकार की, दान दिया और श्रीमहावीरके वचनमें निरन्तर रक्त होकर दयावन्त व भद्रक परिणामी हुआ, जिसके कारण वह अवधिज्ञान प्राप्त कर देवगति मे उत्पन्न हुआ। आनन्द श्रावक का वृत्तान्त इस प्रकार है —

"वाणिज्य" नामक ग्राममें जित शत्रु राजा राज्य करता था। वहाँ आनन्द नामक गृहस्थ रहता था। उसकी स्त्री का नाम था शिवानन्दा। उसके घरमें बारह करोड़ सुवर्ण थी। और दश हजार गौओं का एक गोकुल, ऐसे

परशुराम के अङ्गरक्षक ब्राह्मण उसे मारने के लिए दौड़े। उनको मेघनाद विद्याधरने मार डाले। परशुराम भी यह हाल सुन कर वहाँ गया और सुभूम को मारने के लिये परशु चलाया। मगर उस परशु पर सुभूम की दृष्टि पड़ते ही जैसे वायुके योग से दीपक बुझ जावे उसी प्रकार वह परशु अदृश्य हो गया। और सुभूमने परशुराम पर थाल फेंका। वह थाल मिट कर चक्ररत्न हो गया और उसने परशु राम का मस्तक काट डाला।

परशु रामने जिस प्रकार सात दफे पृथ्वी नि क्षत्री की थी, उसी प्रकार सुभूमने इक्कीस दफे पृथ्वीको निर्ब्राह्मण की। जहाँ तक उसका मालूम हुआ, एक भी ब्राह्मण को जीवित न छोड़ा। चक्ररत्नक बलसे पट खड पृथ्वी जीत कर चक्रवर्ती हुआ। तदनन्तर लोभके वशीभूत होकर धातकीखंडका भरतक्षेत्र जीतने के लिये चर्मरत्न पर सेना चढ़ाकर लवणसमुद्रमे चलने लगा। बीच मे अधिष्ठित सर्व देवोंने सहाय देनेके बजाय समुद्र मे छोड़ दिया। जिससे समुद्रमे डूब कर वह मरणके शरण हुआ और अनेक जीवहिंसाक पाप कर्म करने के कारण सातवीं नरकमे गया।"

अब दूसरे प्रश्नका उत्तर एक गाथा के द्वारा कहते हैं ।

तवसजमदाणरत्रो पयईए भद्दग्रो किवालू य ।
गुरुवयणरत्रो निच्च मरिउ देवेसुसो जायइ॥१८॥

अर्थात् —जो जीव तप, सयम और दानमें रक्त होवे, सहज प्रकृति से ही भद्रक परिणामी होवे, कृपालु दयावन्त होवे, गुरुके वचनमे निरन्तर रक्त होवे और हमेशा गुरु की आज्ञा का पालन करे, वह जीव मर कर देवलोक में उत्पन्न होता है ॥ १८ ॥

जैसे आनन्द श्रावकने तपस्या की, प्रतिमा अङ्गीकार की, दान दिया और श्रीमहावीरके वचनमें निरन्तर रक्त होकर दयावन्त व भद्रक परिणामी हुआ, जिसके कारण वह अवधिज्ञान प्राप्त कर देवगति मे उत्पन्न हुआ । आनन्द श्रावक का वृत्तान्त इस प्रकार है —

" वाणिज्य " नामक ग्राममें जित शत्रु राजा राज्य करता था । वहाँ आनन्द नामक गृहस्थ रहता था । उसकी स्त्री का नाम था शिवानन्दा । उसके घरमे बारह करोड़ सुवर्ण थी । और दश हजार गौओं का एक गोकुल, ऐसे

चार गोकुल थे। उस गाँव के ईशान कोन मे कोल्लाग नामक गाव था, जिसमे आनन्द के अनेक रिश्तेदार रहते थ।

किसी समय वहा पे ' द्रुपलाश नामक उद्यानम श्रीमहावीर स्वामी पधारे । वहाँ जितशत्रु राजा और आनदादि गृहस्थ लोग भगवान् का वदन करने के लिये गये। वीर प्रभु की धर्मदशना का श्रवणकर आनन्द श्रावक ने बारह व्रत अङ्गीकार किये। जिनमें से पाँचवें ' परिग्रह परिमाण ' व्रतमें 'चार करोड़ सुवर्ण कोश (भडार) में रखना, चार करोड़ व्याज देना, और चार करोड़ व्यापार में रोकना, यह सब मिलकर बारह करोड़ सुवण तथा दश हजार गौओं का एक गोकुल ऐसे चार गोकुल रखना ' ऐसा नियम किया। इसके सिवाय खेतों में कृषि करने के निमित्त पाँचसो हल पाँचसो शकट बाहर देशान्तर भेज नेके योग्य और पाँचसो शकट घरका कामकाज करने के योग्य इसकी भी छूट रक्खी, कि जिनके द्वारा खेतों में स धान्य, काष्ट व तृणादि लाये जाय। तथा जलमार्गसे यदि देशान्तर में जानेकी जरूरत होवे तो इसके लिये चार जहाज रक्ख और चार जहाज क्षेत्रसे धान्यादि लाने के

लिये भी रक्खे। अङ्ग पूंछने के लिये रक्तवर्णका ही वस्त्र, दतधावनके लिए केवल जेठीमधको हरा दन्तवन और फलमें मात्र क्षीरामलक फल रक्खा। तैलमें शतपाक और सहस्रपाक तैल, धूपमें शिलारस व अगरको धूप, पुष्पमें जाई व कमलिनी, आभूषणमें कानके आभरण वा नामाङ्कित मुद्रिका व स्नान के लिये आठ पारी समास के इतना पानी का घड़ा तथा पीठीमें गहूंचूर्ण की पीठी इतनी चीजों की छूट रक्खी। बाकी सभी प्रकार के अङ्गलूहण, दन्तुवन, फल, तैल आदि पदार्थों का त्याग किया। तदुपरान्त दो श्वेत पटकूल को छोड़कर अन्य वस्त्रों के भी नियम किये। चन्दन, अगरू, कुकुम इन तीन के अतिरिक्त अन्य वस्तु के विलेपन का भी त्याग किया। मूंग मठ्ठे की खीचड़ी, तदुल की खीर, एव उज्ज्वल मीसिरीसे भरे हुए व पुष्कल घृतमें तले हुए मैदा के पकान्न को छोड़कर शेष पक्वान्नों के भी पच्चक्खाण किये। द्राक्षादिक हरी काष्ट पेया को छोड़कर अन्य पेया के भी पच्चक्खाण किये। सुगंधीमय कलमशालिका कूर छोड़कर दूसरे ओदन के भी नियम किये। उड़द और मूंग को छोड़ कर दूसरे विदलका भी नियम किया। शरत्काल सम्बन्धी गाय का घृत छोड़ कर शेष घृत का भी पच्चक्खाण किया। बथुआ, मंडूकी

और पालक की सरकारी छोड़ कर दूसरी सरकारी के नियम किये। बड़े वा पूर्णादिक छोड़ कर शेष धान्यशाक के नियम किये। आकाश का पानी छोड़कर शेष पानी के नियम किये। इलायची, लौंग, कस्तूरी, कंकोल, कर्पूर, जायफल इन पाँच वस्तुओंमें संस्कारित तंबोल छोड़कर शेष तंबोल खाने के पच्चक्खाण किये। पहले से ही घरमें जो कुछ चीजें थीं उनसे अधिक परिग्रह रखने का नियम किया। यह पाँचवें व सातवें व्रत सम्बन्धी बात कही। उसी अनुसार दूसरे भी सर्व व्रतों के यथायोग्य नियम लेकर श्रीमहावीर प्रभु का वन्दन कर घर को आये। शिवानन्दा स्त्री ने भी श्रीमहावीर के समीप जाकर आनन्द की तरह श्रावक धर्म अङ्गीकार किया। दोनों ने चौदह वर्ष पर्यन्त इस प्रकार श्रावक धर्म का पालन किया। यदि कोई देवता भी मनमें द्वेष करके चलायमान करने को आवे तो भी चलायमान न होने का दृढ़ निश्चय किया।

तत्पश्चात् आनन्द श्रावक को प्रतिमा आराधने का मनोरथ हुआ। उस समय समस्त कुटुम्बी मनुष्यों की आज्ञा लेकर कोलाग ग्राममें पौषधशाला बनवाई। बड़े पुत्र को घर का भार देकर व सर्व सज्जन को जिमा

कर सर्व वृत्तान्त कह सुनाया, और पौषधशाला में जाकर महा तप करते हुए ग्यारह (११) प्रतिमा का आराधन करने में प्रवृत्त हुए। कहा है —

दसणवयसामाइयपोसहपडिमाप्रबंभसच्चित्ते।
आरभपेसउद्दिट्ठवज्जए समणभूए य॥ १॥

इस प्रकार प्रतिमाका आराधन करते हुए आनन्द का शरीर अति दुर्बल हो गया।

इस प्रकार धर्मजागरण करते हुए अनशनका मनोरथ उत्पन्न हुआ। तब संलेषणा (आहार त्याग) करके अनशन किया। तदनन्तर अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ। उस समय श्रीमहावीर स्वामी उद्यान में पधारे। और श्रीगौतमस्वामी छठ की तपस्या के पारणे भिक्षाके निमित्त नगर में पधारे। स्वामी जी अन्न पाणी ले कर जब पीछे लौट रहे थे, तब कोल्लाग ग्राम की ओर बहुत लोगों को जाते हुए देख कर गौतमस्वामीने पूछा कि—ये लोग कहाँ जा रहे हैं? तब किसीने कहा कि—कि हे महाराज! आनन्द श्रावक ने अनशन किया है, उनको वन्दना करने को वे जा रहे हैं। यह श्रवण कर गौतमस्वामी भी आनन्द श्रावक को वन्दन कराने के लिए पधारे। उनको

आते हुए देख कर, आनन्द श्रावक अत्यन्त हर्षवन्त हुआ और कहने लगा कि-हे महाराज! मैं उठकर खड़ा नहीं हो सकता। अत आप-निकट पधारे, सो आपके चरणों का स्पर्श मेरे मस्तक द्वारा मैं करूं। यह श्रवण कर श्रीगौतमस्वामी उनके निकट पधारे। तब आनन्द श्रावकने त्रिधा शुद्धिपूर्वक अपना मस्तक गौतमस्वामी के पैरसे लगा कर वन्दना की और पूछा कि—हे महाराज! गृहस्थको अवधिज्ञान उपजे? गौतमस्वामी बोले कि हाँ, उपजे। तब आनन्दने कहा कि—आपके प्रभावसे मुझे अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ है। उसकी मर्यादा उस प्रकार है कि — पूर्व, दक्षिण और पश्चिम दिशामें समुद्रके भीतर पाँचसौ योजन पर्यंत देखता हूं। और उत्तरदिशि में हिमवत पर्वत पर्यंत देखता हूं। तथा, ऊंचे सौधर्मदेवलोक तक व नीचे पहले नरक पृथ्वीके लोलुआ नरकवासा तक देखता हूं। यह श्रवण कर श्रीगौतमस्वामी ने कहा कि, गृहस्थको इतना अवधिज्ञान न होवे, अत, तुम मिच्छामि दुक्कड़ लो। आनन्दने कहा कि — सत्य कहनेका मिच्छामि दुक्कड़ कैसा? गौतमस्वामीने कहा कि— इतना अवधिज्ञान गृहस्थका न उपजे। तब आनन्दने कहा कि — आप शुद्ध

'मिच्छामिदुक्कड लेवे'। यह वाक्य श्रवण कर गौतमस्वामी शंकित हो कर महावीरस्वामी के पास पधारे और भात-पाणी की आलोचना कर पूछने लगे कि हे भगवन्? आनन्द श्रावक मिच्छामि दुक्कड ले कि मैं लूं? भगवानने फरमाया कि हे गौतम! तू ही मिच्छामि दुक्कड़ ले। क्योंकि आनन्दके कथनानुसार ही उनको अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ है। तब गौतमस्वामीने आनन्द श्रावकके पास जा कर मिच्छामि दुक्कड दिया और आनन्द श्रावक से क्षमा माँग ली। इस तरह आनन्द श्रावकने बीश वर्ष पर्यन्त श्रावक धर्म पाल कर पहले सौधर्मदेवलोक के अरुण भ विमानमें चार पल्योपमके आयुष्य सह देवता हुए। वहाँ से चव कर महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न हो कर मनुष्यपणे में चारित्र (प्रवज्या) पाल कर मोक्ष में जायेंगे। यह दूसरे प्रश्न के उत्तर में आनन्द श्रावक की कथा कही।

इस प्रकार नरक व स्वर्ग की प्राप्ति विषय के दो प्रश्नोत्तर कहे। अब तिर्यंचत्व व मनुष्यत्व पाने के विषय में किये हुए दो प्रश्नों के उत्तर दो गाथाओं के द्वारा कहते हैं —

कज्जत्थ जो सेवइ मित्तं कज्जे कएवि सचयइ।
कूरो गूढमइश्रो तिरिश्रो सो होइमरिऊण ॥१९॥
श्रज्जवमद्दवजुत्तो श्रकोहणोदोसवज्जिश्रो दाइ।
नयसाहुगुणेसुठिश्रोमरिउ सोमाणुसो होइ ॥२०॥

अर्थात्—स्वार्थ के वशीभूत होकर मित्र की सेवा करन वाला, कार्यसिद्धि होने के पश्चात् मित्र को छोड़ देनवाला, उसकी निन्दा करने वाला, क्रूर परिणामी और गूढमतिवाला, अपने मन की बात किसी का कहे नहीं, ऐसा जीव मर कर तिर्यंच होता है। जिस प्रकार अशोक कुमारने माया करके मित्र द्रोह किया। जिससे विमलवाहन कुलगरका हाथी हुश्रा ॥ १९ ॥

आर्जव अर्थात् सरल चित्त वाला होवे, मार्दव यानि मानरहित निरहंकारी होवे, अक्रोधी (क्षमावन्त) होवे, दोषवर्जित अर्थात् जीवघातादि दोषरहित होव, सुपात्र को दान देवे, न्यायवाला होव और महात्मा - साधु के गुणों की प्रशंसा किया करे, वह जीव मृत्यु पाकर मनुष्य होता है। जैसे सागरचंद्र मरकर पहला कुलगर, विमलवाहन, हुश्रा।

अब इन दो प्रश्नों के ऊपर सागरचन्द्र सेठ और अशोकदत्त की कथा कहते हैं—

"महाविदेह क्षेत्रमें अपराजिता नगरी में ईशानचंद्र राजा राज्य करता था। वहां चन्दनदास नामक एक श्रेष्ठी (सेठ) रहता था, उसके सागरचन्द्र नामक एक गुणवन्त पुत्र था। वह सरल चित्तवाला, निरन्तर धर्मपरायण और निर्मल आचार वाला था। उसको अशोकदत्त नामक मित्र था। वह मायावी मन में कूड कपट बहुत रखता था। किसी समय वसन्त मासमें राजा का आदेश हुआ कि "आज वसन्त क्रीड़ा करने के लिए सर्व लोग वन में आवें। यह वार्ता श्रवण कर सागरचंद्र व अशोकदत्त ये दोनों वनमें गये, और राजा भी परिवार सहित वनमें आया। और भी लाखों लोग वहां एकत्रित हुए। सर्व स्थल में गीत, गान, नाटक झूलणादि कौतुक सब लोग करने लगे। उस समय "बचाओ बचाओ" ऐसी चिल्लाहट सुनाई दी। तब सागरचंद्र नजीक होने से खड्ग हाथ में लेकर वहां गया, तो चोरों से अपहराती हुई पुण्यभद्र सेठ की पुत्री प्रिय दर्शना को दयाजनक स्थिति में देखी। उसे सागरचन्द्र ने बलपूर्वक छुड़ाई। यह बात सागरचन्द्र के पिता चन्दन

दास ने सुनी। पुत्र जब घर को आया, तब पिताने शिक्षा दी कि—"हे वत्स! कभी उद्धत मत होना, कुलमर्यादाके अनुकूल बल पराक्रम का उपयोग करना, द्रव्य के अनुसार वस्त्र पहिरना, कुसंगति नहीं करना, बड़ों का विनय करना, बड़ों के कटु वचन को सहन कर लेना, ताकि महत्ता की प्राप्ति होवे। इस लिये तू, तेरा मित्र जो अशोकदत्त है, इसकी संगति छोड़ दे और श्री जैन धर्म का पालन कर।" इस प्रकार पिता की शिक्षा को श्रवण कर सागरचन्द्र ने कहा कि—"हे पिताजी! ऐसा कार्य मैं कभी न करूंगा कि जिससे मेरी इज्जत में धब्बा लगे।" पुत्र के इन वचनों से पिता हर्षित हुआ।

अब पुण्यभद्र सेठ ने भी सागरचन्द्र कुमार का उपकार जान कर अपनी प्रियदर्शना कन्या को बड़े महोत्सव से उसके साथ ब्याह दी। भाग्यने दोनों का अच्छा समागम मिलाया। कुंवर कुंवरी दोनों सुख समाधि से रहने लगे।

किसी समय सागरचन्द्र ग्रामान्तर को गया। पीछे से अशोकदत्त अपने मित्र सागरचन्द्र के वहाँ आकर

प्रियदर्शना के प्रति कपटयुक्त स्नेह दर्शाने लगा और कहने लगा कि 'आइये अपने दोनों परस्पर स्नेह सम्बन्ध कर सुखी होवे'। इस वाक्यको श्रवण करते ही स्त्रीको क्रोध उत्पन्न हुआ। जिससे उसको घर से बाहर निकाल दिया। बाहर निकलते हुए रास्ते में सागरचन्द्र भी ग्रामान्तर से आता हुआ उसको मिला। उसको अशोकदत्त ने कहा कि 'तुम्हारी स्त्री मेरे साथ स्नेह करने को तत्पर हुई, मगर मैंने निषेध किया।' यह बात सुनकर सागरचन्द्र ने विचार कर कहा कि—'अघटित कार्य करना उचित नहीं।' सागरचन्द्र घर आया, तब स्त्री के मुख से मित्रका सर्व स्वरूप जान लिया और सोचने लगा—कि मेरे पिता ने जो कहा था कि—अशोकदत्त की संगति मत करना, यह बात सत्य हुई। ऐसा निश्चय कर के धर्मकार्य करने में तत्पर हुआ। अपनी लक्ष्मी का व्यय सात क्षेत्रों में करने लगा। स्त्री भर्तार दोनों आयुष्य पूर्ण होने पर काल कर जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में दक्षिणखंड में गंगा और सिन्धु नदी के बीच में तीसरे आरे में पल्योपमका आठवाँ भाग अवशेष रहते हुए नवसौ धनुष्य प्रमाण शरीर वाले युगल हुए। जहाँ कल्पवृक्ष के द्वारा मनोवाँछित पदार्थ मिलते हैं। अल्प कषायवाले हुए। परस्पर दोनों में गाढ

मीति हुई और अशोकदत्त मित्र भी मर कर वहीं चार दाँत वाला हाथी हुआ। उस हाथी ने भ्रमण करते हुए एक दिन दोनों युगलों को देखे, उस समय पूर्वकालीन स्नेह के वशसे दोनों सूंड से उठाकर अपनी पीठ पर चढ़ा दिये। अतः उस युगल का विमलवाहन नाम प्रसिद्ध हुआ। आर्जव गुण के प्रताप से सात कुलगर मे यह प्रथम कुलगर हुआ। और अशोकदत्त कपट के करने से तिर्यंच हुआ।'

यह मनुष्यत्व तथा तिर्यंचत्व पाने के विषय मे सागर चन्द्र तथा अशोकदत्त की कथा कही।

अब स्त्री मृत्यु पाकर पुरुषत्व पावे और पुरुष मृत्यु पाकर स्त्रीत्व पावे, इन दो मरनों के उत्तर दो गाथाओं के द्वारा देते हैं -

सतुट्ठासुविणीआअज्जवजुत्ता य जा थिरा निच्च
सच्चजपइ महिलासा पुरिसोहोइ मरिऊण॥२१

जो चवलो सठभावो मायाकवडेहि वचए सयण।
न कस्स य विसत्थोसोपुरिसोमहिलिया होइ२२

अर्थात् "जो स्त्री सन्तोषवती, विनीता, सरल चित्त वाली, स्थिर स्वभाव वाली, और सत्य वचन बोलने वाली होती है, वह स्त्री मर कर पुरुषत्व को प्राप्त करती है ॥ ७१ ॥ जो पुरुष चपल स्वभावी, शठ, कदाग्रही, माया कपट करके मित्र स्वजन का ठगने वाला, ठग और अविश्वासु होता है वह मर कर परभव में स्त्री होता है ॥ ७२ ॥

अब इन दोनों उत्तरों के ऊपर पद्म पद्मिनी की कथा कहते हैं —

"स्वस्तिमती नगरी में न्यायसार नामक राजा राज्य करता था। उस नगर में एक पद्म नामक सेठ रहता था। वह सत्यवादी और सन्तोषी था। उसकी स्त्री का नाम पद्मिनी था। वह बड़ी रूपवती थी। किन्तु कर्मयोग से वह मुखरोग से पीड़ित और कर्कश स्वरवाली थी। एवं असत्यवादिनी तथा मायाविनी भी थी। सेठ ने स्त्री के मुख रोग को मिटाने के लिए अनेक उपचार किए, किन्तु कुछ भी आराम न हुआ। किसी समय उस स्त्री ने कपटभाव से अपने पति से कहा कि—"हे महाराज! मुझे आराम

नहीं हुआ, अतएव अब आप दूसरी स्त्री से, शादी करके सुख से रहें, तब सेठने कहा कि —'मुझे परम सतोष है, अत यह बात कभी मत छेड़ना'।

एक दिन सेठ पुराने स्थानमें देहचिंता के कारण गया। वहाँ मेघ की वृष्टि से निधान प्रगट हुआ। उसे देख कर सेठ वहाँ से उठकर घर को चला गया। वहाँ नजीक में कोटवाल खड़ा था, उसने निधान देखा और राजा से जाकर कहा कि यह सेठ उनमें निधान प्रगट होता देखकर घर को चला गया। उसी समय राजा ने कोटवालको कहा कि यह सेठ पीछेसे धन लेने को गया होगा। अत तु पुन वहाँ जा और देख कि उसका क्या हुआ है? कोटवाल फिर वहाँ गया, किन्तु सेठ को वहाँ नहीं देखा। तब फिर राजा के पास आकर कहा, कि 'स्वामिन्! सेठ निधान लेने को तो आया नहीं'। ऐसा श्रवणकर राजाने सेठको बुलाकर पूछा कि 'तुमने निधान क्यों नहीं लिया?' सेठ ने कहा कि—महाराज 'मेरे पास अखूट निधान भरा पड़ा है तो फिर दूसरे निधान को मैं क्या करूं'? राजा ने पूछा कि तुम्हारे पास कौन सा निधान है?' तब सेठ ने कहा कि—मेरे पास सन्तोष

रूप अक्षय निधान है ।' यह श्रवण कर राजा बहुत हर्षित हुआ और सेठ को निर्लोभी जानकर नगर सेठ के पद से विभूषित किया ।

किसी समय उद्यान में श्रुतिकेवली पधारे । उनको राजा तथा पद्म सेठ मिलकर वंदन करने को गये । धर्म देशना सुनने के पश्चात् सेठ ने गुरु से पूछा कि 'हे महाराज ! मुझे सत्य और संतोष मति अति रूचि है इसका कारण क्या ? और मेरी स्त्री का मुखरोग दान से उसका कोहल स्वर हुआ है इसका भी कारण क्या है ? सो कृपाकर मुझको कहिए ।'

सेठ का यह कथन सुनकर गुरू उनके पूर्वभव कहने लगे कि—'इसी नगरमें नाग सेठ रहता था वह असत्य वादी, असन्तोषी और मायावी था। उसकी नागिला नाम की स्त्री थी, वह 'माया रहित' तथा सत्य संतोष को धारण करने वाली थी ।

एकदा, नाग सेठका नागमित्र नामक कोई मित्र देशान्तर जाता था । उसकी स्त्री चपला थी, उसके भयसे नागमित्रने अपने पुत्र को कह कर अपना सुवर्ण नाग

सेठ के पास अनामत (थापण) रक्खा और नाग सेठकी स्त्री नागिला का साक्षीरूप रक्खी। फिर नागमित्र देशान्तरको गया। वहां प्रचुर धन उपार्जन करके वापिस लौटते हुए रास्ते में चार लोगोंने उस पर हुमला किया और उसे मार डाला। यह हाल जब उसकी स्त्री तथा पुत्र को मालूम हुआ, तब वे दुःखित होकर शोक करने लगे। कुछ समय व्यतीत होने के बाद नागमित्रके पुत्रने अपने पिता की रखी हुई थापण नाग सेठके पास मांगी, तब सेठ तो कबुल हो गया और कहने लगा कि,—' मेरे पास तेरे पिताने कुछ भी थापण नहीं रक्खी है।'

नागमित्रके पुत्रने राजाके पास जाकर बात कही। राजाने कहा कि-' तेरे पास कोई गवाही है?' उसने कहा कि —'नाग सेठकी स्त्री नागिला मेरी साक्षी देनेवाली है।' तब सेठको प्रथम राजाने बुलाकर पूछा, मगर उसने कहा कि-' मेरे पास उसके पिताने कुछ भी थापण नहीं रक्खी है।' फिर राजाने नागिला को बुलाकर पूछा तब नागिला विचार करने लगी कि ' एक ओर तो कूप है और दूसरी ओर बाघ है। यह न्याय मेरा हुआ है। क्योंकि एक ओर भरतार है, भरतार के प्रतिकूल न

होना यह उत्तम स्त्रीकी रीति है। और दूसरी ओर विचार करू तो सत्य वचन का लोप होता है कि जो कार्य इस भव और परभव में महा दु खदायी होगा। ' इस प्रकार विचार कर अन्तमें यह निश्चय किया कि जा हा सो हो, मगर सत्य बोलना। अमृत पीनेसे मृत्यु न होगी यह सोच कर सत्य बात राजाके समक्ष कह दी। उस वचनसे राजा बहुत हर्षित हुआ, और नाग सेठ स थापण दिलवा कर उसे छोड दिया तथा उसकी स्त्री को उत्तम वस्त्रोंका शिरपाव दे कर बेटी की। अनन्तर नगर का स्त्रियोंमें नागिला सत्यवक्ता के रूप से प्रसिद्ध हुई। एक दिन नाग सेठके घर पर महीनेके उपवासके पारणे काई मुनि पधारे। उनको भाव सहित निर्दोप अन्न – पानी दिया। जिससे दोनों ने शुभ कर्म उपार्जन किया। आयु पूर्ण हाते नागिलाका जीव मृत्यु पाकर—तु यहाँ पद्म सेठ के रूपसे आ कर उत्पन्न हुआ और नाग सठ मृत्यु पा कर कपट के योग से यहाँ तेरी पद्मिनी स्त्री हुई है। जीमसे असत्य बोला जिसक कारण मुख रोग व काहल ज्वर हुआ है। इस प्रकार पूर्वभव का वृत्तात सुन कर योग्य पा कर दोनों मोक्षमें गये। कहा है —

जीमे मच्चा बालिए राग द्वेष कर दूर ।
उत्तमस सद्गत करो लाभे ज्यों सुख पूर ॥

अब सातवीं पृच्छाका उत्तर एक गाथा के द्वारा कहते हैं —

आस वसह पसु वा जो निल्लछिय इह करेइ ।
सो सव्वगनिहीणो नपु सम्रो होइ मरिऊण ॥२३

अर्थात्—जा पुरुष घोडे और वृषभ यानि बैल तथा बकरे प्रमुख पशुओं का आँक करे, नाक छेदे, गलकंबल काटे, अण्ड काटे, वह जीव सर्व मनुष्यों में अधम जानना और वह मर कर नपुंसक होता है (२३) जैसे गोत्रासन अनेक जीवोंके अवयव छेदे, जिससे अनेक भव पर्यंत नपुंसकत्व पाया, उस गोत्रास की कथा कहते हैं ।

"वणिक ग्राममें मित्रदेव राजा राज्य करता था । उसका श्रीकी नामक पट्टराणी थी । किसी समय वहाँ वर्द्धमान स्वामी समोसरे । बारह परिषद मिली । धर्मदेशना श्रवण कर सब हर्षित हुए । वहाँ श्रीमहावीरके प्रथम शिष्य और सात हाथ प्रमाण शरीर वाले

असीगुणमंडारासी प्रमुख अनेक लब्धि के धारक श्रीगौतम स्वामी छट छपके पारणे श्रीमहावीर की आज्ञा पाकर पात्रादिक की प्रतिलेखना करके वणिकग्राम में गोचरी करने को पधारे। गोचरी करके वापिस लौटते हुए रास्ते में अनेक नगर जनों से घिरे हुए और गाढ बन्धनों से बंधे हुए एक पुरुष को देखा। जिसके कान, नाक, होठ, जीभ फटे हुए थे, जिसका शरीर धूलसे लिपटा हुआ था और तिल तिल जितना मास उसके शरीर में से काट कर उसे खिलाते हैं। ऐसा दयापात्र और दुःखी देखकर यह पाप का फल है, ऐसा जानकर मनमें वैराग्य ला कर श्रीमहावीर के पास आये और इरियावही पडक्कम कर भात पानी आलोइ पूछने लगे कि—हे भगवन्! किस किस प्रकारके रौद्र कर्मके करनेसे यह पुरुष ऐसा महा दुःखी हुआ है? तब भगवान बोले कि—हे गौतम! सुन,

हस्तिनापुर नगर में सुनन्द राजा राज्य करता था। उस गाँव में गौओं को बैठने के लिये लोगोंने एक मंडप बनाया था। निरन्तर व गौए जगल में से तृणादिक चर कर और पानी पी कर शाम के समय मंडप में आकर सुखसे बैठती थीं। उस गांव में भीम नामक एक पुरुष

रहता था । उसकी उत्पला नाम की स्त्री थी । उसके पुत्रका नाम गोत्रास था । वह छोटी वयसे ही महा दुष्ट था, निर्दयी, पापी और जीवघात का करने वाला था । किसी दिन रात्रिके समय लोग सो गये, इसके बाद वह गोत्रास अपने हाथमें काती लेकर गौओंके मंडप में आया। वहाँ कई गायों के पूछ, कान, नाक, ओष्ठ, जिह्वा और पैर वगैरह अवयव काट डाले । ऐसा पाप करके, वह पाँच सो वर्ष की आयु पूरी कर दूसरी नरकमें नारकीपणे उत्पन्न हुआ । क्योंकि कहा है —

घोड़े बैल समारीया, कीना जीव विनाश ।
पुण्य विहूणा जीव सो, पावे नरक निवास ॥ १ ॥

गोत्रासका जीव नरक की घोर वेदनाए भोग कर वहाँ से निकल कर इसी नगर में सुभद्र सेठ की सुमित्रा नामा स्त्रीके वहाँ पुत्र रूपसे उत्पन्न हुआ है। उसके जन्मके होते ही उसे एक कचरेके पूजेमें फेंक दिया। फिर वहाँ से उठा लाए और उज्झित ऐसा नाम दिया। जब वह बड़ा हुआ, तब सुभद्र सेठ धनोपार्जनके लिए उस को साथ लेकर वहाणमें चढ़ा। कर्मवशात्, संवर्तक वायुके योगसे

भवदग्ध नष्ट हुआ। जिससे सुभद्र सेठ मर करके देव हुआ। उस वृत्तान्त को सुनकर उज्झित पुत्र घरको आया। पिता के सुमित्रा सेठाणी भी शोक—सन्ताप करती हुई। मृत्युके वश हुई पीछेसे लडका दुराचारी पापिष्ठ हुआ। यह बात जानकर लोगोंने उसे घरसे बाहर निकाल दिया। वह गाँवमें इधर उधर भटकने लगा और सातों दुर्व्यसनको सेवता हुआ सर्व अनर्थोंका मूल रूप हुआ। उसन राजाकी मानेती महा रूपवन्त, कलावान, सर्व देशोंकी भाषा जाननेवाली ऐसी कामध्वजा नामक वेश्या, कि जिसके साथ राजाका बहुत स्नेह सम्बन्ध था, उसके घरमें प्रवेश किया। राजाके अनुचरोंने उज्झित पुत्रको वेश्याके घरमें प्रवेश करते हुए देख कर पकड लिया। और बाँध कर राजाके सन्मुख लाये। उस राजाने उसको बडी विडंबना पूर्वक मार डाला। मर कर वह पहली नर्क में उत्पन्न हुआ। वहाँ से मर कर वह नपुसक हुआ है। इस प्रकार अनेक भवपर्यंत नपुंसकत्वके दुःखको सहन करेगा। ऐसा जान कर निलछन कर्म नहीं करना चाहिए।" यह सातवें प्रश्नके उत्तरमें गोत्रासकी कथा कही।

अब आठवें प्रश्नका प्रत्युत्तर एक गाथाके द्वारा कहते हैं:—

रहता था । उसकी उत्पला नाम की स्त्री थी । उसके पुत्रका नाम गोत्रास था । वह छोटी वयसे ही महा दुष्ट था, निर्दयी, पापी और जीवघात का करने वाला था । किसी दिन रात्रिके समय लोग सो गये, इससे बाद वह गोत्रास अपने हाथमें कातो लेकर गौओंके मण्डप में आया । वहाँ वह गायों के पूछ, कान, नाक, ओष्ट, जिव्हा और पैर वगैरह अवयव काट डाले । एसा पाप करके वह पाँच सो वर्ष की आयु पूरी कर दूसरी नरकमें नारकीपणे उत्पन्न हुआ । क्योंकि कहा है —

घोड़े बैल समारीया, कीना जीव विनाश ।
पुण्य विहूणा जीव सो, पावे नरक निवास ॥ १ ॥

गोत्रासका जीव नरक की घोर वेदनाए भोग कर वहाँ से निकल कर इसी नगर में सुभद्र सेठ की सुमित्रा नामा स्त्रीके वहाँ पुत्र रूपसे उत्पन्न हुआ है । उसके जन्मके होते ही उसे एक कचरेके पूंजेमें फैंक दिया । फिर वहाँ से उठा लाये और उज्झित ऐसा नाम दिया । जब वह बड़ा हुआ, तब सुभद्र सेठ धनोपार्जनके लिए उस को साथ लेकर वहाणमें चढ़ा । कर्मवशात्, संवर्तक वायुके योगसे

मवहरण नष्ट हुआ। जिससे सुभद्र सेठ मर करके देव हुआ। उस वृत्तान्त को सुनकर उज्भित पुत्र घरको आया। पिता के सुमित्रा सेठाणी भी शोक—सन्ताप करती हुई। मृत्युके वश हुई पीछेसे लड़का दुराचारी पापिष्ट हुआ। यह बात जानकर लोगोंने उसे घरसे बाहर निकाल दिया। वह गाँवमें इधर उधर भटकने लगा और सातों दुर्व्यसनको सेवता हुआ सर्व अनर्थोंका मूल रूप हुआ। उसने राजाकी मानी महा रूपवन्त, कलावान, सर्व देशोंकी भाषा जाननेवाली ऐसी कामध्वजा नामक वेश्या, कि जिसके साथ राजाका बहुत स्नेह सम्बन्ध था, उसके घरमें प्रवेश किया। राजाके अनुचरोंने उज्भित पुत्रको वेश्याके घरमें प्रवेश करते हुए देख कर पकड़ लिया। और बाँध कर राजाके सन्मुख लाये। उस राजाने उसका वध विडम्बना पूर्वक मार डाला। मर कर वह पहली नरकमें उत्पन्न हुआ। वहाँ से मर कर वह नपुंसक हुआ है। इस प्रकार अनेक भवपर्यंत नपुंसकत्वके दुःखको भोगेगा। ऐसा जान कर निर्लाञ्छन कर्म नहीं करना चाहिए। यह सातवें प्रश्नके उत्तरमें गोत्रासकी कथा कही।

अब आठवें प्रश्नका प्रत्युत्तर पर कहते हैं :—

जो मारेइनिद्दयमणोपरलोअ नेव मन्नए किंचि ।
अइसंकिलिट्ठकम्मोअप्पाउसोभवेपुरिसो॥२४॥

जो निर्दयी मनवाला होकर जीवोंकी घात करे, स्वर्ग मोक्ष प्रमुख परलोकको किञ्चित्मात्र भी माने नहीं, और जो जीव अतिसंक्लिष्ट विरुद्ध कर्म्मों को आचरे, वह जीव परभवमें अल्प आयुष्यवाला होता है (२४)

जैसे कि—उज्जयिनी नगरीमें समुद्रदत्त सेठकी भार्या धारिणी दुराचारिणी थी, वह यज्ञदत्त नामक नौकरके साथ आसक्त होकर व उसके साथ मिलकर अपने पुत्र शिवकुमारके साथ द्राह करने लगी । अन्तमें उसने उन सबको हत्या करा डाली और खुद भी मर गई । आगे अनेक भवमें अल्पायु पाये । अब यहा शिवकुमार और यज्ञदत्तकी कथा कहते हैं—

" उज्जयिनी नगरीमे समुद्रदत्त सेठ रहता था । उसकी धारिणी नामा स्त्री थी । उसको शिवकुमार नामक पुत्र था और यज्ञदत्त नामक कर्मकर था । किसी एक दिन समुद्रदत्त सेठको रोग उत्पन्न हुआ, और उससे वह मर गया । पीछे से उसके पुत्रने मृतकार्य किये ।

कर्मके योगसे धारिणी सेठाणी पहले यज्ञदत्त कर्मकरके साथ लुब्ध हुई। यौवनावस्था में जितेन्द्रिय होना महा दुर्लभ है, उसमें भी कामका जीतने का कार्य परम दुर्लभ है। पीछे यह कार्य लोक विरुद्ध जान कर शिवकुमार बार बार निषेध करता रहा, तथापि माताने उसका कहना नहीं माना।

एकदिन धारिणीने यज्ञदत्तको एकान्तमें कहा कि—'मेरा पुत्र शिवकुमार अच्छा नहीं है, अब जिस प्रकार सूर्य कुमुदिनीका विनाश करता है, और जिस प्रकार नदीका प्रवाह नदीके तटका नाश करता है, एव जिस प्रकार दावानल वनका नाश करता है, उसी प्रकार शिवकुमार अपना विनाश करेगा। इस लिये गुप्त रीति से उसको मार डालना चाहिये।' यह श्रवण कर यज्ञदत्तने कहा —

यह बात युक्त नहीं है, क्योंकि तेरा पुत्र वह मेरा स्वामी है, उसके प्रासादसे अपने दोनों सुखी हैं। अतएव स्वामीद्रोह करना यह महापाप का हेतु है।

यह श्रवण कर-धारिणी बोली कि—इसमें पाप क्या

है ? यदि वह जीवित रहेगा, तो अपनेका सुखका अन्त-राय करेगा।' इत्यादि बात सुन कर विषयांध यज्ञदत्तने भी शिवकुमारको मार डालनेका वचन दिया। अब कपटभावसे धारिणीने अपने पुत्रको कहा कि-' हे वत्स ! शस्त्रधारक किसी भी पुरुषका विश्वास मत करना।' फिर एक दिन वह कुमारको कहने लगी कि—' गोवालिक लोग अपने गौओं की रक्षा अच्छी तरह नहीं करते हैं, अत तुम दोनों गायों की रक्षा करने के लिये जाओ।' यह सुनकर दोनों मनुष्य हाथ में हथियार लेकर जगलमें गये। दोनों आगे पीछे चलते हैं, एक दूसरेका विश्वास कोई नहीं करता है। नीचे उतरते हुए एक खाडमें यज्ञदत्तने खड्ग निकाला, वह पीछेसे शिवकुमारने जान लिया, तब वहांसे भाग कर गोकुल में छिप गया। वहाँ गोपालकों को सब हाल कह कर उनको सचेत कर रक्खे।

सध्याके समय गौओंके बाडेमे दोनों शय्या बिछा के सो गये। तत्पश्चात् शिवकुमारने उठ कर शय्यामे खड्ग रखकर उपरसे ढाप दिया और खुद गायों के समूहमे छिप रहा। बादमें यज्ञदत्तने गुप्त रीतिसे खड्ग

निकाल कर शिवकुमारकी शय्याके ऊपर प्रहार किया, उस समय शिवकुमारने गौओंके समूहमें से गुपचुप निकल करके यज्ञदत्त पर खड्ग प्रहार करके उसको मार डाला। और मुखसे चोर ! चोर !! ऐसी चिल्लाहट करते हुए गावाल व शिवकुमार थोड़ी दूर तक वाहर गये, फिर वापिस आ कर बूम पाडने लगे कि यज्ञदत्त को चोरने मार डाला। यह काम करके शिवकुमार घर आया। उसकी माताने पूछा कि 'यज्ञदत्त कहाँ है ?' तब शिवकुमारने कहा कि 'पीछे आ रहा है।' यह कह कर मनमें विचार करता है कि—मेरी माताके कर्म तो देखो, कैसे निन्दनीय है ? जो पुत्र को भी मारने के लिए तत्पर हुई ! ऐसा विचार कर माताको कहने लगा कि—मैं रात्रि को सोया नहीं हु, जिससे मुझे निद्रा आतीहै। ऐसा कह कर वह सो जाता है। उस समय उसकी माताने खड्गके ऊपर चीटियाँ चढती हुई देखीं, तब खड्ग निकाल कर देखा तो रुधिर से लिप्त था। इस परसे वह विचारने लगी कि—यज्ञदत्त को निश्चय इसीने मार डाला है। ऐसा चिन्तन करके अति दु खित हुई। और उसी खड्गके द्वारा अपने पुत्रको मार डाला। वह धात्रमाताने देखा; उसने मुशलसे धारिणीको मार

डाला । मरत मरत धारिणीने चपेटाके द्वारा धावमाताके मर्मस्थानमे प्रहार किये जिससे वह भी मर गई । इस प्रकार निर्दयता पूर्वक परस्पर द्रोह करके वे मर गये और वे सर्व जीव उस भवमें पापके करने से अल्पायुषी हुए और आगामी भवोंमे भी महा दुःखी होंगे । अतः जीववध नहीं करना चाहिये । कहा है :—

" जीववधे पापज कर, प्राण हिये कुबुद्धि ।
भारी कर्मा जीव जे, ते पावे किम सिद्धि ॥ १ ॥ "

इस प्रकार आठवें प्रश्न के उत्तर मे शिवकुमार यक्ष दत्तकी कथा कही । अब नवमे प्रश्न का उत्तर एक गाथाके द्वारा कहते हैं —

**मारेइ जो न जीवे दयावरो अभयदानसंतुट्ठो ।
दीहाऊसो पुरिसोगोयम ! भणियोनसंदेहो ॥२५॥**

जो जीवों की हिंसा नहीं करता, दयावान होता है और अभयदान देकर संतुष्ट रहता है, वह जीव मर कर आगामी भवमें संपूर्ण आयुवाला होता है, इस विषय मे, हे गौतम, जरामी संदेह मत कर ।

ऐसी जीवदया पालनेसे दामनक दीर्घायुष्यवाला हुआ था। इस लिये यहां दामनक की कथा कही जाती है,—

"राजगृही नगरीमें जितशत्रु राजा राज्य करता था। उसकी जयश्री नामकी रानी थी। उस नगरमें मणिकार नामक एक श्रेष्ठी था, जिसकी स्त्रीका नाम सुयशा था। इनको दामनक नामक पुत्र हुआ। यह जब आठ वर्षका हुआ, तब इसके माता—पिता मर गये। दामनक बहुत दरिद्र था, इस लिये वह धनिगृहस्थोंके घरों में भिक्षावृत्तिकर अपना निर्वाह करता था। एकदिन दो मुनि सागरपोत नामक गृहस्थके घरमें गोचरीके लिये गये। गोचरी बहेरकर ज्योंही वे दो मुनि बाहर निकले, त्योंही उस दामनकने उसी घरमें प्रवेश किया। इस बालक को देखकर एक मुनिने दूसरे मुनिसे कहा—'सचमुच ही यह बालक इस घरका मालिक होगा।' मुनिका यह कथन ऊपर गोखमें बैठे हुए घरके स्वामीने सुन लिया। सुनते ही उसके हृदयमें आघात पहुंचा। वह सोचने लगा—'अहा! बड़े बड़े कष्टों का सामना करके मैंने यह लक्ष्मी उपार्जन की है। क्या इसका मालिक यह रंक जा

भिक्षावृत्तिसे जीता है, वह शाता ? । और गुरुका वचन भी अन्यथा नहीं हो सकता । अब तो किसी उपायसे इस लड़के को यमद्वारमें पहुचाना ही श्रेयस्कर है ' इस प्रकार विचार करके सागरपोतने उस बालक को मोदकादिको लालच देकर पिंगल नामक चांडालके घर रक्खा । उस चाँडालको सेठने गुप्तरीत्या कह दिया कि—' मैं तेरेको पाँच मुद्राएं दूगा । तूने इस बालकू को पूरा कर देना और मुझ को दिखलाना ।' इस बालकके स्वरूप को देखकर चाँडालके अन्त करणमे करुणाभाव उत्पन्न हुआ । वह विचारने लगा –क्या द्रव्यके लोभसे ऐसे निर्दोष बालकका मारदू ।' चाँडालने कतरनीसे उस बालककी कनिष्ठ उगली काटली और उससे कहा —'भाई तू यहाँसे बहुतही शीघ्र चला जा । नहीं तो इस कतरनीसे मैं तेरे को मार दूगा ।' बालक गभराहटमे ही वहाँ से चल दिया और जिस गाममें सागरपोत का गोकुल था, वहाँ पहुचा । गोकुल क स्वामी नन्दने, जिसको पुत्र नहीं था, पुत्र रूपसे इसको रख लिया । उधर चाँडालने लडके की कनिष्ट अगुली सागरपोत को दिखलाई । सागरपोत समझा कि— लडका मर गया और मुनिका वचन मिथ्या हुआ ।

कुछ वर्षोंके बाद सागरपोत अपने गोकुलमें गया,' तब

उसने अंगुली कटे हुए दामनकको युवावस्थामें देखा। दामनकको देखते ही उसके हृदयमें आघात पहुचा। उसने गोकुलरक्षक नदको पूछा कि—'यह लडका तेरे पास कहाँ से? तुझे यह कहाँसे मिला?' नन्दने कहा—'महाराज किसी चंडालने इसकी अंगुली काट ली, इस लिये यह भयभ्रान्त होकर यहाँ चला आया, और मेरे पास वर्षों से रहता है। मैंने इसकी पुत्ररूप रक्षा की है।' यह सुनते ही सागरपोत अपने घरकी ओर चलने के लिए प्रस्तुत हुआ। तब नन्दने आश्चर्यान्वित होकर कहा-'वाह! आप क्यों न अभी आप वैसेही कैसे चले जाते हैं? क्या कोई ऊरूरी आपको विस्मृत हुआ है?। यदि ऐसा है तो आप एक पत्र लिख दीजिये, मेरा यह पुत्र शीघ्र आपका कार्यकर करेगा। सेठ को यह बात रुचिकर हुई। उसने एक पत्र लिखकर दामनकको दिया, और कहा यह पत्र शीघ्रही जाकर मेरे पुत्र को दे दें। वह बहुत जल्दी राजगृहीके समीप पहुंचा। और थोड़ी देर विश्राम लेने के कारण एक उद्यानस्थ कामदेवके मन्दिरमे जा बैठा। थोडी ही देरमें उसको वहाँ निद्रा आ गई, क्योंकी चलने के परिश्रमसे वह बड़ा थका हुआ था। इसी समय सागरपोत की पुत्री, जिसका नाम 'विषा' था, इसी मन्दिरमें कामदेवकी पूजा करनेको आई।

कामदेव की पूजा करते हुए इसने अपने योग्य वरकी याचना की। इधर पूजा करके वह निकलने लगी तब इसने इस नवयुवक को सोता हुआ देखा। विषा, इस युवकके रूप-लावण्यपर मुग्ध हुई। इसने, बड़ी हुशियारीसे इसके पास अपने पिताकी मुद्रिकासे मुद्रित पत्र को खोलकर देखा, तो इसके आश्चर्य की सीमा न रही। पत्रमें लिखा था— 'इस पत्रके लाने वाले को निःशंक मनसे विष दे देना। इस कार्य में मेरी सम्पूर्ण आज्ञा है।' पहिले तो इस कन्याको, इस पत्रके पढ़ने से बड़ा दुःख हुआ, परन्तु विचार कर उसने सोचा कि—ऐसे रूप लावण्ययुक्त युवक को विष (जहर) देने के लिये मेरे पिता कभी नहीं लिख सकते। वस्तुतः उनके लिखने का आशय यह है कि विषाको (मेरे को) दे देना, क्योंकि इन्होंने मेरे ही योग्य यह वर देखा है। विषाने तुरन्त ही इस कल्पनाकी सिद्धि के लिये एक सलीपर अपने नेत्र से काजल लेकर 'विष' को 'विषा' बना लिया। और बड़ी सावधानी के साथ वह पत्र ज्यों का त्यों कपड़ेमें बाँध दिया और अपने घर चली गई।

कुछ समय के अनन्तर दामनक जाग्रत हुआ, और

शहर में जाकर सेठके पुत्र समुद्रदत्त को वह पत्र दे दिया। समुद्रदत्तने पत्रको पढ़कर विचार किया कि—'पिताजीने लिखा है कि—इस आने वाले आदमी को विषा दे देना। इसमें जरा भी संदेह नहीं करना।' इसलिए मुझको चाहिये कि—मेरी बहन विषाका लग्न इस युवकके साथ कर दूं।

बस, विचार पक्का कर लिया। और बड़े उत्सवके साथ विषाका लग्न दामनकके साथ कर दिया। विवाहके दो दिन बाद ही यह समाचार सागरपोत के कर्णगोचर हुआ। समाचार सुनते ही उसके हृदयमें आघात पहुंचा। वह बड़ा दुःखी होता हुआ अपने घर की ओर आते हुए रास्तेमें विचार करने लगा—'अहो! मैं जो जो करता हूं, सो सो विधि अन्यथा ही करता है। खैर, यह मेरा गृहजमाई हुआ है, तथापि इसको मारे बिना तो मैं नहीं रहूंगा।' ऐसा विचार कर, वह अपने गाँव गया और सीधा ही पिंगल चाण्डालके वहां जाकर कहने लगा—'अरे चाँडाल! तूने क्यों उस लड़केको नहीं मारा? सच कहदे।'

चाण्डालने कहा —'सेठ! उसके प्रति मुझको दया आई, इसलिये मैंने मारा नहीं। खैर अगर उसको मारना ही है, तो आप वह लड़का मुझको दिखलाइये; अब मैं

उसे मार डालूंगा।' सेठने कहा — पिंगल, आज शाम को मैं दामनकको मेरी गोत्र देवताके मन्दिरमें भेजूंगा, तूने वहां उसको अवश्य मार देना।' संध्या समय सेठने घर आकर दामनक और उसकी स्त्री विषाको कहा — 'अरे, अभी तक तुमने क्या कुलदेवी का पूजन नहीं किया? जिसके प्रभाव से तुम दोनों का संगम हुआ है।' ऐसा कह कर उसने उन दोनों को पुष्पादि पूजा सामग्री के साथ पूजाके लिए गोत्रदेवीके मन्दिर में भेजे। जब वे दोनों बजार में होकर गोत्रदेवीके मन्दिर प्रति जाने लगे, तब सेठ की दुकान पर बैठे हुए सेठके पुत्र समुद्रदत्तने उठकर उन दोनोंसे कहा — यह पूजा का समय नहीं है।' ऐसा कहकर उन दोनोंको किसी एक स्थान पर बैठाये, और स्वयं वे पुष्पादि चीजें लेकर गोत्रदेवीके मन्दिर में गया। मन्दिरमें तो संकेतानुसार पिंगलचाण्डाल मारने के लिये आया ही था। उसने समझा कि यह दामनक आया। ऐसा विचार कर उसने झटसे खड्गद्वारा उसको हनन कर दिया। ज्यों ही यह बात शहर में पहुंची, त्यों ही हाहाकार मच गया। सागरपोतने जिसको मरवानेके लिए प्रयत्न किया था, वह तो बच गया, और उसके बदलेमें अपना लड़काही मारा गया। यह सुनकर सागरपोत को

पारवार दु ख हुआ। दु ख क्या हुआ, हृदयमें ऐसा आ घात पहुंचा, कि जिससे उसकी मृत्युही होगई। तत्पश्चात् कुटुम्बी पुरुषोंने मिल कर दामनकको सागरपोतके घरका मालिक बनाया। दामनक ऐसा धर्मशील था, कि-यौव नावस्थामें भी वह विषयों की इच्छा नहीं करता था।

किसी एक दिन उसने किसी पवित्र साधु से धर्मो-पदेश सुना। उपदेशश्रवणके बाद उसने उस ऋषि से पूछा - 'भगवन्! कृपा कर आप मेरे पूर्वभव का वृत्तान्त सुनाइये।'

मुनिने उसके पूर्वभवका वृत्तान्त सुनाते हुए कहा --

-- 'इसी भरतक्षेत्रके गजपुर नगरमें सुनन्द नामक एक कुलपुत्र था। उसका जिनदास नामक मित्र था। किसी दिन वे दोनों उद्यान में गये। वहाँ कंचनाचार्य नामक एक आचार्यका दर्शन सुनन्द अपने मित्रके साथ उनके पास गया। आचार्यने देशना दी, उसमें आचार्यने कहा - 'जो मनुष्य मांस खाता है, वह अत्यन्त दु खोंका भोगता हुआ नरकमें जाता है।' इसको सुन सुनन्दने मांसभक्षण नहीं करने की प्रतिज्ञा की। और जीवरक्षामें तत्पर हुआ।

कुछ समय के बाद बड़ा भारी दुष्काल पड़ा। उस दुष्कालके समयमें बहुधा लोग मांस भक्षणसे गुजारा करने लगे। एक दिन सुनन्द की स्त्रीने अपने पतिसे कहा,— 'स्वामिन! आप भी नदी किनारे जाइये, और जाल डालकर मत्स्य ले आईये। जिससे अपने कुटुम्बका पोषण हो।' इन वचनों को सुनकर वह कहने लगा,— 'हे प्रिये! ऐसा कार्य मैं कदापि नहीं करूंगा। ऐसा करने में महती हिंसा होती है।' स्त्रीने कहा —'आपको किसी मुंडन बहकाया मालूम होता है। अच्छा, तुम दूर हो जाओ!' इस तरह स्त्रीने बहुत तिरस्कार किया, तब वह जाल लेकर तालाब पर गया। और गहनजल में जाल डाल कर मत्स्य निकालने का प्रयत्न करने लगा। जाल में फसे हुए मत्स्यों को तड़फड़ाते हुए जब वह देखने लगा, तब इसको बड़ी दया आने लगी। और उस दयाके कारण उन मत्स्यों को वापस पानी में धीरे से डाल देता था। दो दिन तक इसने इस प्रकार प्रयत्न किया। तीसरे दिन इस तरह करते हुए एक मत्स्यकी पाँख टूट गई। उसको देखकर सुनन्द अत्यन्त ही दुःखी होने लगा। वह अपने घर आकर घर के मनुष्यों से कहने लगा 'मैं कभी भी जीवहिंसा को नहीं करूंगा, जो नरक को

देनेवाली है।' ऐसा कहकर वह घरसे निकल गया। कुछ कालतक अपने नियम का पालनकर वह मरा। वही तू दामनक उत्पन्न हुआ है। मत्स्यकी पांख तोडनेके कर्म के उदयसे इस भवमें तेरी अगुली काटी गई।'

इस प्रकार गुरुके मुखसे अपने पूर्वभवको सुन करके सुनन्दको वैराग्य उत्पन्न हुआ। उसने अनशन करके समाधिपूर्वक अल्प आयुष्य पूरा कर देव हुआ। वहाँ से चवकर मनुष्य भवमें दीक्षा लेकर क्रमसे मोक्षमें जायगा।"

अब दशवें और ग्यारहवें प्रश्नके उत्तर दो गाथाओंके द्वारा देते हैं —

देइ न नियमं सम्म दिन्ने पि निवारए दिन्तं।
एएहि कम्मेहि भोगेहिं विवज्जिओ होइ ॥२६॥

सयणासणवत्थ वा,भत्तं पत्तं च पाणयं वावि।
होयेण देय तुट्ठो गोयम भोगी नरो होइ २७

अपने पास वस्तु होने पर भी जो किसीको न दे, और यदि दे भी, तो पीछेसे संताप करे, एवं अन्य कोई देता हो, तो उसको भी रोके। ऐसा कर्मोंके करनेसे जीव भोगसे

विवर्जित यानि भोगरहित होता है। जिस प्रकार धनसार मठ छासठ कोडी द्रव्यका मालिक होने पर भी अत्यन्त कृपण होनेसे भोगरहित हुआ (२६)

तथा, जो पुरुष शयन, पाट, संथारा, आसन, पात्र, पायपुछण, कम्बल, वस्त्र भात, पानी आदि महात्माको देने योग्य वस्तु उत्कृष्ट भावसे सन्तुष्ट होकर देता है वह पुरुष हे गौतम ! भोगवाला सुखी होता है (२७) जैसे कि धनसार सेठने सुपात्र दान देकर भोग सम्बन्धी सुख प्राप्त किया। कहा है —

विनतडी स्वामी सुनो, तप जप क्रिया न कीध।
राग द्वेष पातक किये, गर्व दानज दीध ॥ १ ॥

उस सेठकी कथा इस प्रकार है —" मथुरा नगरी में धनसार सेठ रहता था, वह छासठ कोटी द्रव्य का अधिपति था परन्तु महा कृपण था। एक कौडी भी धर्म के निमित्त देता नहीं था। द्वार पर किसी भिक्षाचरको देखता, तो उस पर रोष करता। यदि कोई आकर याचना भी करता, तो उस पर क्रुद्ध होता था। याचक को देखते ही उठकर चला जाता। धर्म के निमित्त धन देने की बात में कभी शरीक नहीं होता था। अपने घरमें कभी अच्छी रसोइ भी नहीं बनती थी। उसकी ऐसी कृपणताके

कारण उस नगरमें कोई मनुष्य भोजन करनेके पहले धनसार सेठको नाम भी नहीं लेता था । लागोंमें ऐसा शक पड गया था कि— उसका नाम लेंगे, तो अन्न भी नहीं मिलेगा ।

उसने अपने द्रव्यका तीसरा हिस्सा बाईस कोटी द्रव्य जमीन में गाड रक्खा था । उसको एक दिन खोल कर देखा, तो कोयले के सदृश देखा । बस देखते ही सेठ को मूर्छा आगई । वह जमीन पर गिर गया । थोडी दरके बाद सचेत हुआ, उस समय किसीने आकर कहा — 'सेठजी ! आपके बाईस कोडीके मालसे भरे हुए नाव समुद्र में डूब गये ।' फिर किसीने आकर कहाकि 'अमुक स्थान पर माल से भरी हुई अपनी गाडी चोरों ने लूट ली' । इत्यादि द्रव्य के नाश होने की बातें सुनकर सेठ अचेत सा होगया । रात्रि दिवस घूमता फिरता और सब लोग उसकी हाँसी किया करते । एक दिन दस लाख भाँड मवहण से भर कर सेठ देशान्तर को चला । वहा भी कर्म योग से समुद्रमें गाज-बीज और वर्षा हुई । तूफान से मवहण नष्ट होगया, मगर भाग्ययोग से एक पाटिया हाथ में आया, जिसको पकडकर सेठ किनारे पहुंचा । वहाँ से

भटकता हुआ घर को आया। मनमें विचार करने लगा कि मुझको द्रव्य मिला, परन्तु कभी सुपात्रमें दान नहीं दिया, बल्कि देते हुए को भी रोका। मेरी लक्ष्मी परोप कारादि किसी सुकृत में काम नहीं आई। शास्त्र में लक्ष्मी की तीन गति ठीक कही है —

दान भोगौ नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुंक्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति ॥१॥

उपर्युक्त दान, भोग और नाश ऐसी तीन गति में से मेरी लक्ष्मी की तो केवल एक तीसरी गति ही हुई। अर्थात् नष्ट ही हो गई।

एक दिन वनमें केवली भगवान समोसरे। सेठ उनको वन्दन करने के लिये गया। वन्दन करके उसने पूछा कि 'हे भगवन्। किस कर्म के उदयसे मैं कृपण हुआ? तथा मेरी सर्व लक्ष्मी चली गयी' इसका कारण क्या?' गुरु कहने लगे कि 'हे सेठ! भरतक्षेत्र में दो भाई अत्यन्त ऋद्धिवान थे। उनमें बड़ा भाई तो सरल चित्त वाला, उदार और गंभीर था और छोटा भाई रौद्र परि णामी एवं कृपण था। वह बड़े भाई को भी दानादिक

देते हुए रोकता था, मगर वह तो दान अवश्य दिया ही करता था।

कालक्रमसे बड़े भाईके पास दिनप्रतिदिन लक्ष्मी बढ़ती ही गई, और छोटा भाई देखता ही रहा, मगर किसी को एक कौड़ी भी देता नहीं, जिससे लक्ष्मी बढ़नेके बदले घटती ही गई। वह भाईकी ऋद्धिको लेनेके लिए बड़े भाई के साथ बहुत कलह करने लगा। उस कलहके योग से एक दिन बड़े भाई ने गुरु की देशना श्रवण कर वैराग्य पाकर दीक्षा ली। काल करके प्रथम देवलोक में उत्पन्न हुआ। और छोटा भाई कृपण होने पर भी निर्धन रहा। लोगों के द्वारा निन्दनीय होकर उसने तापसी दीक्षा लेकर अज्ञान तप किया और असुरकुमार देवों में जाकर उत्पन्न हुआ। वहाँ से चव कर यहाँ तू धनसार नामक सेठ हुआ है। और मैं बड़ा भाई देवलोक से चव कर तामलिप्ती नगरी में एक व्यवहारिक के वहाँ पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ। और दीक्षा ले घातिकर्म क्षय करके केवल ज्ञान उपार्जन कर मैं अभी यहाँ आया हूं।' यह श्रवणकर सेठ अपने पूर्वभव का भाई जानकर बहुत हर्षित हुआ। फिर गुरु ने कहा कि 'तू दान नहीं दे सका, जिससे

अन्तराय कर्म उपार्जन किया। तथा दान देते हुए को रोका, जिससे सर्व धन क्षय होगया। ' इत्यादि बातें सुन कर धनसार सेठ ने ऐसा नियम किया कि 'अब से मैं जितना धन उपार्जन करूंगा, उनमें से चौथा हिस्सा धर्म काय मे खर्च कर डालूंगा। ऐसी प्रतिज्ञा यावज्जीव के लिए करता हूं। तथा परके दोषों को प्रकट करूंगा नहीं।' ऐसा कह कर श्रावक धर्म अंगीकार किया। और केवली भगवान के पास पूर्वभव के अपराध की क्षमा मांगी।

अब सेठ तामलिप्ती नगरी में जाकर व्यापार करने लगा। वहाँ लक्ष्मी उपार्जन करके उसमें से बहुत द्रव्य धर्मार्थ सात क्षेत्रों में खर्चने लगा। और अष्टमी चतुर्दशी को पोषध भी करने लगा।

एक दिन शून्य घर में पौषध लेकर कायसग्गध्यान मे रहे वहाँ व्यंतरदेव ने कोप करके, सर्प का रूप धारण कर सेठ को काटा। सारा दिन सेठ प्रतिमा में स्थित रहे। वहाँ तक व्यतर देव ने अनेक प्रकार के उपसर्ग किये, किन्तु सेठ क्षुभित नहीं हुए। सेठ की इस प्रकार की स्थिरता देखकर व्यंतर सन्तुष्ट होकर कहने लगा कि ' तुम जो मांगो सो मैं दूं, परन्तु सेठ न कुछ

भी याचना नहीं की । तो भी व्यंतर ने कहा कि 'आप पुन मथुरा नगरी में जाओ, और तुम्हारे भंडार में गर्से हुए बाईस कोडी सुवर्ण जो कोयले के सदृश होगये हैं, वे तुम्हारे पुण्य के योग से सुवर्ण हो जायेंगे।' फिर सेठ ने मथुरा नगरी में आकर निधान खोल कर देखा तो कोयले के स्थान पर पूर्वके अनुसार सुवर्ण दृष्टिगोचर हुआ। वैसे ही जलमार्ग के प्रवहण भी पानी की कमीके कारण कहीं खराबे नजीक रुक रहे थे, वे भी कुशलता पूर्वक आ पहुचे। इस प्रकार सर्व स्थलसे पुन अपार काही द्रव्य एकत्रित हुआ। उसमेंसे दान देने लगा और भोग भोगने लगा। उसने कई जिनप्रासाद कराये। इस प्रकार सातों क्षेत्रों में अच्छी तरह धन का सद्व्यय करके धर्मसम्बन्धी अचल कीर्ति उपार्जन की। अन्तमें पुत्रको घरका भार सोंप कर अनशन किया। और अन्तमें काल करके पहले देवलोकके अरुणाभ विमानमें चार पल्योपमके आयुष्य सहित उत्पन्न हुआ। वहाँ से चव कर महाविदेह क्षेत्रमें मनुष्यत्व पा कर और दीक्षा ले कर मोक्ष में जायगा ''

अब बारहवे और तेरहवे प्रश्नके उत्तर कहते हैं —

गुरुदेवयसाहूण विणयपरो सत दसणोश्रो य।
नभणेइकिपिकडुय सोपुरिसो जायए सुहिश्रो २८
श्रगुणोविगविश्रोवियनिदइधोरेतवस्सिणोकामी
माणी विड्वश्रो जो सो जायइ दूही पुरिसी २९

अर्थात्— जो पुरुष गुरु, देव और साधु महात्माका विनय करने में तत्पर रहता है और जो आकृति का शान्त होता है, किसीको कटु वचन नहीं कहता अर्थात् मर्म युक्त निंदा युक्त तथा अप्रिय वचन नहीं बोलता, वह पुरुष सौभाग्यवन्त होता है। (२८) जो पुरुष गुणरहित होने पर भी गर्वित याने अहंकारी होता है, और गुणवन्त धैर्यवान् ऐसे तपस्वी की निन्दा करता है, तथा जो मानी अर्थात् जात्यादि मद का करने वाला अभिमानी होता है, एव जो जिनशासनविडम्बक होता है, वह पुरुष दुर्भागी होता है। (२९) जैसे राजदेवका भाई भोजदेव उक्त पापों के करने से दुर्भागी हुआ। उन राजदेव और भोजदेवकी कथा इस प्रकार है —

" अयोध्या नगरी का सोमचन्द्र राजा सौम्य प्रकृति वाला था। उस नगर में देवपाल नामक एक सेठ रहता

था। उसकी देवदिन्ना नामक स्त्री थी। उसके राजदेव और भोजदेव नामके दो पुत्र थे। उनमें बड़ा भाई सर्वको प्रिय एवं सुभागी था। आठवें वर्षमें उसने सर्व कलाओं को सीख लिया और अनेक शास्त्र भी पढ़े, और यौवनावस्था प्राप्त होने पर किसी कन्या के साथ स्वयवर लग्न किया। वह जहाँ कहीं जाता था, और जिस किसी चीज का व्यापार करता था उसमें अवश्य लाभ प्राप्त करता था। यहा तक कि यह पुत्र राजा को भी वल्लभ हो गया।

अब छोटा भाई जो भोजदेव था, वह पहलेसे ही दुर्भागी था। जब वह यौवनावस्था को प्राप्त हुआ, तब उसके पिताने अनेक सेठोंके पास कन्याकी याचना की; परन्तु उसको देने की किसी ने इच्छा नहीं की। उस समय सेठने किसी एक दरिद्रीको पाँच सो सुवर्ण महोर दे कर उसकी कन्याके साथ लग्न करनका निश्चय किया। उस कन्याके पिताने सोनैया के लोभसे कन्या देना मजूर किया; परन्तु कन्या कहने लगी कि, 'मैं अग्निमें प्रवेश करके जल जाऊगी, मगर उस दुर्भागी के साथ शादी नहीं करूंगी' ऐसा हट लेकर बैठी। बादमें वेश्या को धन देकर उसके घर को जाने लगा। वहाँ भी

वेश्या ऐसा चिन्तन करने लगी कि, किसी भी तरहसे यह यहाँसे उठ जावे तो अच्छा। वह जो कुछ व्यापार करता था उसमें अवश्य नुकसान होता था। मूलगी पूंजी भी प्राप्त नहीं होती थी। इस प्रकार यद्यपि वे दोनों सगे भाई थे, तथापि दोनोंमें महदन्तर था।

एक दिन कोई ज्ञानी गुरु वनमें पधारे। उनकी वन्दना करनेके लिए सेठजी दोनों पुत्रोंको साथमें ले कर गये। वन्दना करक धमदेशना श्रवण की। तत्पश्चात् सेठने पूछा कि 'हे भगवन्! मेर दानों पुत्रों में से एक महा सुभागी और दूसरा महा दुर्भागी हुआ है, सो किन किन कर्मों क उदयसे हुए?।'

तब गुरू बाले कि — 'हे देवपाल! ससारमें सर्व जीव अपने २ किये हुए शुभाशुभ कर्मों के फल भोगते हैं। अब तेर पुत्रों का वृत्तांत सुन।

'इसी नगर में इस भवसे तीसरे भवमें गुणधर और मालधर नामक दो वणिक रहते थे। उनमें गुणधर तो देव, गुरु और साधुओंके प्रति विनीत एव अक्रोधी था, किसी को कटु वचन नहीं कहता था, और दूसरा जो

मानधर था, वह महा निर्गुणी, अहंकारी और साधुओं का तथा धार्मिक पुरुषों का निन्दक था। महापुरुषोंका उपहास करता हुआ कर्म उपार्जन करता था।

किसी दिन एक साधुने मासखमण तप किया। उस तपके वलसे देव भी आकर्षित हो कर उस तपस्वी की सेवा करने लगे। यह देख कर मानधर उसकी निन्दा करने लगा और कहने लगा कि—'अरे यह पाखंडी मायावी लोगों को वंचित करने के लिये तप करता है। महत्व पाने के लिये कष्ट सहन करता है। इस प्रकार निन्दासे एक देवताने रोका भी, तथापि निन्दा करने लगा। तब देवने क्रोधातुर होकर चपेटा मारा, जिससे मृत्यु पा कर पहली नर्कमें गया। और वहा गुणधर नामक वणिक मर कर देवता हुआ। अब वह नरकसे निकल कर भोजदेव (तुम्हारा पुत्र) हुआ है। वह पूर्वकृत कर्मके योगसे दुर्भागी है। और पहले देव लोकमें चवकर तेरे वहाँ राजदेव नामक पुत्र हुआ है, वह सुकृत के योगसे सुभागी हुआ है।' इस प्रकार गुरु की वाणी को श्रवण करते हुए दोनों भाइयो को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ, जिससे पूर्वके भव देखने

लगे, भोजदेवने आत्म निन्दा करके कुछ कर्म का क्षय किया, और दो भाई तथा पिता तीनो ने मिलकर केवली भगवान्के पास श्रावक धर्म अङ्गीकार किया। अनुक्रमसे दोनो पुत्र दीक्षा ले कर और चारित्र धर्म पालकर आयु पूर्ण होनेपर देवलोकमे गये। और तीसर भवमे मोक्षम जायेंगे। कहा है —

गुण बोले निंदे नहीं, त साभाणी हुत।
अवगुण बोले परतणा, दोहग त पामन्त ॥ २ ॥

अब चौदहवें और पंद्रहवें प्रश्नके उत्तर कहते हैं

जो पढइ चितइ सुणे अन्न पाढेइ देइ उवएसं।
सुयगुरुभत्तिजुत्तो मरिउ सो होइ मेहावी ॥३०॥

लवनाणगुणसमिद्धोप्पवमन्नइकिरनयाणइएसो।
स मरिऊण अहन्नो दुम्मेहो जायइ पुरिसो ॥३१॥

अर्थात् —जो पुरुष ज्ञान सीखे, सुने, सूत्रों के अर्थ मनमें चिन्तवे, तथा अन्य पुरुषोंको ज्ञान पढ़ावे उनका धर्मोपदेश देवे और जो पुरुष सिद्धांत को तथा सद्गुरुकी भक्ति करे वह पुरुष मर कर मेधावी अर्थात् बुद्धिशाली,

चतुर, शाना और विचक्षण होता है। जिस प्रकार मतिसागरका पुत्र सुबुद्धि प्रधान बुद्धिमान् हुआ (३०) तथा जो तपस्वी ज्ञानवन्त गुणवन्त पुरुष हो, उसकी जो पुरुष अवगणना करें, मुख से ऐसा बोले कि 'कुछ नहीं, इसमें माल क्या है ? यह कुछ भी नहीं जानता है' मूर्ख है, वह पुरुष अधन्य अर्थात् अभाग्यवान, दुष्ट-पापिष्ट और दुर्बुद्धिवाला होता है, जैसे सुबुद्धि प्रधान का छोटा भाई कुबुद्धि के कारण दुःखित हुआ था (३१)

इन दो प्रश्नोंके ऊपर सुबुद्धि कुबुद्धिकी कथा कही जाती है।

"क्षितिप्रतिष्ठित नगर में चन्द्रयशा राजा राज्य करता था। उसको मतिसागर नामक प्रधान था, जिसके पुत्र का नाम सुबुद्धि था। वह छोटी वय में पढ़ कर प्रज्ञा के बल से सर्व कलाओं में निपुण हुआ। चार प्रकारकी बुद्धि का निधान हुआ। प्रधान को फिर दूसरा पुत्र हुआ, वह भी पढ़ने योग्य हुआ। तब इसे पढ़ने के लिये पाठशाला में भेजा गया। पंडित ने इसको पढ़ाने के लिये चार मास पर्यन्त बहुत उद्यम किया' परन्तु जिस प्रकार कर्षणी लोग उखर भूमि में बीज बोवें

किसी को कुछ भी न दूंगा। इस प्रकार रात्रि दिन परस्पर लड़ने लगे। कोई किसी का वचन मानता नहीं।

फिर तीनों भाइयों ने आकर राजा के प्रधान को सब बात कही, परन्तु प्रधान से भी उसका न्याय नहीं हुआ, जिससे तीनों भाई शोकाकुल हुए। उस समय में प्रधान का पुत्र सुबुद्धि वहाँ आया। उस के सामने चारों निधानों के सम्बन्ध में सब हाल कह सुनाया। सुबुद्धि ने कहा कि 'राजा का आदेश होवे, तो मैं तुम्हारा झगड़ा निपटा दूं।' राजा ने आदेश दिया, तब सुबुद्धि ने चारों भाइयों को एकान्त में बुला कर कहा कि 'तुम्हारा पिता बहुत चतुर था' उसने चारों भाई का लाख लाख टका देने का कहा है, क्योंकि बड़े भाई के निधान में केश रक्खे हुए हैं, अत घोड़े, गौ, भैंस, ऊंट आदिक जो चौपद रूप धन है, वह उसको दिया है। और दूसरे के निधान में मिट्टी निकली है, अतएव उसको क्षेत्र जमीन रूप धन दिया है। तीसरे के निधान में बहियाँ व खत पत्रादि हैं, उससे यह फलित होता है कि जितना — धन व्याजु दिया हुआ है यानि लोगों के पास जो लेना है वह धन उसको दिया हुआ है। और सबसे छोटे भाई

जो सोना तथा रत्न जो घर में है वह दिये हैं।' यह सुन कर चारोंने हिसाब कर देखा तो सब के हिस्से में लाख लाख टकेकी पूंजी होती थी। यह देखकर चारों भाइयों ने राजा के पास जा कर कहा कि 'हे स्वामिन्! सुबुद्धि ने हमारे झगड़े का निपटारा कर दिया है'। यह सुन कर राजा प्रसन्न हुआ और सुबुद्धि लोक में प्रसिद्ध हुआ। और दूसरा पुत्र लोगों में हाँसी पात्र होकर एवं निन्दा पाकर कुबुद्धियाके नामसे लोकमें प्रसिद्ध हुआ।

उस समय कोई ज्ञानी गुरु उस वनके उद्यान में पधारे। उनको वन्दना करने के लिये राजा तथा प्रधान अपने पुत्र सहित तथा अन्य लोग भी गये। वन्दना कर और धर्मोपदेश श्रवण कर प्रधानने सुबुद्धि दुर्बुद्धि नामक दोनों पुत्रों के सम्बन्धमें गुरुसे प्रश्न किया, तब गुरु कहने लगे कि-'हे प्रधान! इसी नगरमें एक विमल और दूसरा अचल नामक दो वणिक रहते थे, परन्तु दोनों के स्वभाव मिलते नहीं थे। उनमें से विमलने दीक्षा ली, देवगुरु सिद्धांत की भक्ति की, सिद्धाँत पढ़, उनके अर्थ को जान लिया, दूसरे साधुओंको भी पढाये, आखिरमें आचार्य पद पाये, उस समय बहुत जीवोंको धर्मोपदेश देकर अपना आयुष्य पूर्ण कर के दूसरे देवलोक में देवता हुआ।

दूसरा जो अचल नामक वणिक था, वह तपस्वी, ज्ञानी तथा धर्मवन्त पुरुषों की निंदा करता व कहता था कि-' यह साधु क्या जानते हैं ? ' इस प्रकार सर्व की अवज्ञा करता था। जिस पापके कारण वह दूसरी नरक में गया।

अब विमल का जीव देवलोक से चव कर तेरा सुबुद्धि नामक पुत्र हुआ है और अचलका जीव नरकमें से निकल कर पूर्व भवमें किये हुए निन्दा के पाप से यहाँ पर तेरा दुर्बुद्धि नामक पुत्र हुआ है। वह अब भी संसार में बहुत रुलेगा। इत्यादि पूर्वभव की बातें सुनकर सुबुद्धि ने श्रावक धर्म अङ्गीकार किया। और कुछ दिन के बाद दीक्षा भी ली। सिद्धान्त पढ़कर और चारित्र पाल कर पाँचवें ब्रह्म देवलोक में उत्पन्न हुआ। अनुक्रम से मोक्षमें भी जायगा। कहा है —

भणे भणावे ज्ञान ज, पावे निर्मल बुद्धि।
देव गुरु भक्ति कर, अनुक्रमे पावे सिद्धि ॥ १ ॥

और भी कहा है —

जिणपवरसुरतेअ वीरं नमिऊं विसालरायतयं।
लद्धिआ बान्नाबाहा भणंति निसुणंति सुक्खकरो ॥१॥

अब सोलहवें और सत्रहवें प्रश्न के उत्तर दो गाथा ओं के द्वारा कहते हैं —

जोपुण गुरुजणसेवी धम्माधम्माइ जाणिउ कुणइ
सुयदेवगुरुभत्तो मरिउ सो पंडिओ होइ ॥३२॥
मारेइखाइ पीयइ किवा पढिएण किच धम्मेण
एअ चिय चिंततो मरिउं सो काहलोहोइ ॥३३॥

अर्थात्—जो पुरुष गुरुजन यानि वडिलों की सेवा भक्ति करने में तत्पर होता है, धर्माधर्म अर्थात् पुण्य पाप का स्वरूप जानने की वांछा करता है, तथा जो श्रुत सिद्धान्त का और देव गुरु का भक्त होता है, वह कुशल पुरुष मर कर पंडित होता है (३२) जो पुरुष जीवों को मारे, हिन्सा करे, मद्य मांसादिक खावे पीवे, मौज मझाह करे और इस प्रकार चिन्तन करे कि ‘धर्म करने की क्या जरूरत है ? पढ़ने पढ़ाने से क्या फायदा है ? वह जीव मर कर काहल-मूक-मूर्ख होता है (३३) जिस प्रकार पूर्वभव मे आँबाका जीव मर कर कुशल हुआ और आंबाका मित्र जो, लींबा था वह मर कर कुशल के वहाँ कुमार नामक सेवक हुआ। उसकी कथा कहते हैं —

धारावास नगरमें वेसमण सेठ रहता था, उसका कुशल नामक पुत्र हुआ। वह पढ़ कर ७२ कलाओं में प्रवीण हुआ। और पदानुसारिणी महाप्रज्ञ हुआ। अब उस सेठ के यहाँ एक कर्मकर था, जो कि कुरूप, दुर्भागी, मूक व सर्वरोगी था। तथापि कुशल उस कर्मकरके ऊपर स्नेह रखता था। कुशल जैनधर्म का जानकार था और धर्म क्रियाओं को भी करता था।

एक दिन कुशल क्रीड़ा करने के लिये वन में गया। वहाँ एक विद्याधर को ऊंचा उछल कर पीछा नीचे पड़ता हुआ देखा। उसको कुशलने पूछा कि—' तुम उत्तम पुरुष होने पर भी पाँख रहित पक्षी के अनुसार क्या चढ़ते पड़ते हो '। यह श्रवण कर विद्याधर बोला कि मैं वैताढ्य का वासी विचित्रमति नामक विद्याधर हूँ। इस समय मैं श्रीपर्वत को गया था, वहाँ से वापिस लौटते हुए मेरा मित्र विद्याधर मिला, उसको किसनेक शस्त्र के घाव लगे हुए देखे, तब मैंने पूछा कि-तेरे को यह क्या हो गया? उसने कहा कि मेरी स्त्री को एक दूसरा विद्याधर ले जा रहा था, उसके पीछे जा कर युद्ध करके मेरी स्त्री को लेकर यहाँ रहा हूं। युद्ध में घाव लगे हैं।, यह सुनकर मैंने व्रणसंरोहणी औषधि के

मयोग से उसका मज्जन किया। वह विद्याधर स्त्री को लेकर अपने स्थान को गया, परन्तु हे भाइ ! व्याकुलता के कारण मैं आकाशगामिनी विद्या का पद भूल गया हु, जिस से गिर जाता हु। , यह बात श्रवण कर कुशल ने कहा कि-' तुम्हारी विद्या का अग्रिम पद याद कर मुझे कहो '। तब विद्याधरने प्रथम का पद कह सुनाया। उसके अनुसार कुशल ने पदानुसारिणी प्रज्ञा के बल से समस्त परिपूर्ण आकाशगामिनी विद्या के पद कह सुनाये, जिस से विद्याधर हर्षित और विस्मित हुआ एव विचार करने लगा कि—' यह पुरुष प्रज्ञा, रूप और गुणों करके श्रेयस्कर है। परोपकार करने में दक्ष है। ऐसे पुरुष विरले ही होते है।' ऐसा सोचकर कुशल के माता पिताका नाम पूछ कर विद्याधर स्वस्थान का चला गया।

दूसरे दिन वेसमण सेठका घर पूछता हुआ विद्याधर वहाँ आया, वहाँ पर कुशल को देवपूजा करता हुआ देख कर विद्याधर ने पूछा कि, 'तुम यह क्या कर रहे हो ?' उसने कहा कि—' देवपूजा, गुरुभक्ति आदिके द्वारा श्री जिन धर्मका आराधन कर रहा हूं'। यह देख कर विद्याधर ने भी जैन धर्म अङ्गीकार किया और

कहने लगा कि, एक तो आकाशगामिनी विद्या का पद याद कर दिया, यह उपकार और दूसरा श्रीजैनधर्म बतलाया यह उपकार ये दोनों उपकार तुमने मुझ पर किये जिसका प्रत्युपकार मैं किसी हालत में नहीं कर सकता। यह कह कर पुनः सेठ को कहने लगा कि-' मेरे पिता ने एक निमित्तिया से पूछा था कि 'मेरी पुत्री का वर कौन होगा ?' निमित्तियाने कहा था कि -' तेरा पुत्र विद्या भूल जायगा, उसको जो याद करा देगा, वह तेरी पुत्री का पति होगा, इस वास्ते हे सेठ! तुम्हारे पुत्रको मेरे साथ वैताढ्य पर्वत पर भेजो तो विवाह करा दें। यह श्रवण कर सेठने पुत्रका वैताढ्य पर्वत पर भेजा, वहाँ शुभ लग्न में विवाह करके फिर विद्याधर, कुशल तथा कुशल की पत्नी-ये तीनों शाश्वत चैत्यको वंदन करने को गये, सर्व चैत्योंको वंदन कर चैत्यके मंडप में आये। वहां चारणश्रमण मुनिको वांदे। मुनिने विद्याधरको कहा कि तेरे बिनोइ से तुम्हें जिन धर्म की प्राप्ति हुई है।

उस समय मुनि को ज्ञानवन्त जान कर कुशल ने पूछा कि-' हे महाराज ! किस शुभ कर्मके उदयसे पदानुसारिणी प्रज्ञा-- अत्यन्त निर्मल बुद्धि मुझको प्राप्त हुई ? और कुमार नामक मेरा सेवक किस कर्म के योग से मुख

रोगी, मूर्ख और कुरूपवान् हुआ ? एव उसपर मेरे हृदयमें बहुत प्रेम आता है इसका भी क्या कारण ? वह कृपा कर मुझे कहिए।'

मुनि ने कहा कि—' इस भवसे तीसरे भवमें तू और कुमार मिलकर दोनों कुलपुत्र मित्र थे। एक का नाम आँबा व दूसरे का नाम लींबाँ था। तुम दोनों में परस्पर अत्यन्त स्नेह था। आँबा निरन्तर गुरुकी सेवा करता था, पुण्य पाप सम्बन्धी विचार पूछता रहता था और गुरुके कहनेसे उसने पाँच वर्ष और पाँच मास पर्यन्त ज्ञानपचमी तप, विधिपूर्वक एकाग्र चित्त से किया। उसने ज्ञान और ज्ञानवन्तकी अत्यन्त भक्ति की, उस पुण्यसे आँबाका जीव मर कर देवलोक में देवता हुआ। वहाँ से चवकर तू वेसमण सेठ का पुत्र हुआ है। और लींबा का जीव तो नास्तिकवादी होकर, जीवहिंसा करना, अच्छा खाना, अच्छा पीना, स्वेच्छानुसार घूमना, ' पढ़नेसे क्या होगा ? धर्म करने की क्या जरूरत ? उसका फल कुछ भी नहीं है, जो धर्म करे सो विशेष दुःखी होवे, ऐसा ही चिन्तवन करना तथा लोगों को उपदेश भी ऐसा ही करना, यही उसका काम था। यद्यपि दोनों मित्र थे, तथापि स्वभाव में एक दूसरे के बीच बड़ा ही अन्तर था। एक ही गाँठमें

चाहे बाँधे हो, लेकिन जो काच है वह काच ही कहावेगा और जो मणि होगा सो मणिही कहलावेगा । उसी प्रकार दोनों मित्र थे, तो भी आँबा धर्मका उत्थापन करता था । धर्मकी निंदा करके वह नरकमें गया । वहाँ से निकल कर कुमार नामक तुम्हारा सेवक हुआ । पूर्वकृत कर्म के उदय से वह मूक, मूर्ख दुर्भागी और कुरूपी हुआ । जैसा नाम वैसाही परिणाम हुआ और हे कुशल ! तूने ज्ञानपचमीका तप किया, ज्ञानवन्त गुरु की भक्ति करी, जिससे तू निर्मल बुद्धि वाला हुआ और इसी कारण से धर्म में तेरी भाव प्रज्ञा है । ।

इस प्रकार गुरुकी वाणी श्रवण करते हुए कुशल को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ । पूर्वभव देखे, उस समय गुरुके पाससे श्रावक धर्म अङ्गीकार किया देशविरति हुआ और वहाँ से सुन्दरी नामक स्त्री सहित अपने घरको गया, और विद्याधर वैताढ्य पर्वत पर अपने स्थान को गया ।

कुशल को घर आने के बाद पुत्र प्राप्ति हुई । स्त्री भर्तार दोनों ने पचमी का तप किया, वह पूर्ण होने पर उसको उजमणा (उत्सव) किया । श्रीसघकी भक्तिकी । तत्पश्चात् घरका भार पुत्र को सुपुर्द कर कुशल ने पिता

महित दीक्षा ली। ग्यारह अङ्ग व चौदह पूर्व पढ़ कर शुद्ध चारित्रका पालन कर मुक्ति में गया और लीवाके जीवने दीर्घकाल पर्यन्त संसार में परिभ्रमण किया। कहा है —

"जे नाणपचमितवंउत्तमजीवा कुणंति भावजुआ
उवभुंजियमणुअसुहं पावंतिकेवलनाणं" ॥१॥

अब अठारहवीं व उन्नीसवीं पृच्छाके उत्तर दो गाथाओं के द्वारा कहते हैं।

सव्वेसिं जीवाणं तासं ण करेइ णो करावेइ।
परपोडवज्जणाओगोयमधीरो भवेपुरिसो॥३४॥
कुक्कडतित्तरलावेसूअरहरिणे अ विविहजीवे अ।
धारेइ निच्चकालं सो सव्वकालं हवइ भीरू॥३५॥

अर्थात्— जो जीव सर्व प्रकारके जीवोंको अभय देवे, किसीको भय उपजावे नहीं, त्रास पहुंचावे नहीं, किसीको पीडा उपजावे नहीं वह पुरुष हे गौतम! धैर्यवन्त साहसिक होता है। जिस प्रकार पृथ्वीतिलक नगरमें धर्मसिंह क्षत्रियका पुत्र अभयसिंह नामक महा धैर्यवान् हुआ (३४)

तथा जो जीव सुरये, तीतर, सूअर, हरिण मयूर विविध प्रकारके जीवोंको निरन्तर बधन ताडनादि करे, पिंजरेमें रखे, वह जीव सदैव भीरु होता है उचाटमें रहता है। जिस प्रकार अभयसिंह का छोटा भाई धनसिंह क्षत्रिय भीरु हुआ ॥ ३४ ॥

अब दोनों उत्तरके विषयमें अभयसिंह और धनसिंह इन दोनों भाइयोंकी कथा कहते हैं।

" पृथ्वीतिलक नगरमें पृथ्वीतिलक राजा राज्य करता था। उस राजाका सेवक धर्मसिंह क्षत्रिय था, वह जैनधर्ममें रक्त था। उसको एक अभयसिंह और दूसरा धनसिंह नामक दो पुत्र थे, परन्तु सबके कर्म भिन्न भिन्न होनेसे स्वभाव भी भिन्न २ होते हैं। बड़ा भाई तो वाघ, सिंह, सर्प, शस्त्र भूत, प्रेत इत्यादि जीवोंसे भी डरता नहीं था और दूसरा छोटा भाई जो धनसिंह था वह तो रस्सी को देखनेसे भी साप मान कर डरता था। सहज पत्ता हिलता देख तो भी भयभ्रान्त होता था।

किसी समय उस नगर के करीब एक सिंह आया जानकर उस रास्ते से कोई भी मनुष्य नहीं निकलता था। तब प्रधानन राजा के पास जाकर विज्ञप्ति की कि—' हे

महाराज ! सिंहके भयसे रस्तेमें कोई मनुष्य नहीं चल सकता है। उस समय राजाने सिंह को मार कर लानेका बीड़ा फिराया, मगर किसीने उसको स्वीकार नहीं किया। जब अभयसिंहने बीड़ा लिया और कहा कि—"हे महाराज आपका आदेश होवे तो मैं अकेला ही जाकर सिंहका वध करके ले आऊं। और लोगोंको सुख कर दूंगा। ऐसा कह कर वनमें गया, वहां सिंह को बुला कर भाला मार कर उसका वध किया और वापिस आकर राजा को प्रणाम किया। राजाने खुश होकर उसको बड़ा शिरपाव बहुत वस्त्राभरण दिये।

पुन एकदा कोइ एक राजा, कि जिसकी सरहद पृथ्वीतिलकके राजाकी सीमासे मिलती थी, वह पृथ्वी तिलककी आज्ञा का उल्लंघन करता हुआ डाका पाडता था, गावों का लूटता था, उसका निग्रह करने के लिये राजाने बीड़ा फिराया, वह भी अभयसिंह ने लिया और कटक ले कर दुश्मन सामंत के नगर पहुचा। और उस राजाके पास दूत भेज कर कहलाया कि—हमारे राजा की आज्ञा का मान्य कर, वरना युद्ध करने में सज्ज हो जाओ। तब सामंतने कहा कि आगे भी कई दफा राजाका

तथा जो जीव मुरघे, तीतर, सूअर, हरिण प्रमुख विविध प्रकारके जीवोंको निरंतर बंधन ताडनादि कर, पिंजरेमें रखे, वह जीव सदैव भीरु होता है उचाटमें रहता है। जिस प्रकार अभयसिंह का छोटा भाई धनसिंह क्षत्रिय भीरु हुआ ॥ ३५ ॥

अब दोनों उत्तरके विषयमें अभयसिंह और धनसिंह इन दोनों भाइयोंकी कथा कहते हैं।

“ पृथ्वीतिलक नगरमें पृथ्वीतिलक राजा राज्य करता था। उस राजाका सेवक धर्मसिंह क्षत्रिय था, वह जैनधर्ममें रक्त था। उसको एक अभयसिंह और दूसरा धनसिंह नामक दो पुत्र थे, परन्तु सबके कर्म भिन्न भिन्न होनेसे स्वभाव भी भिन्न २ होते हैं। बड़ा भाई तो बाघ, सिंह, सर्प, शरभ भूत, प्रेत इत्यादि जीवोंसे भी डरता नहीं था और दूसरा छोटा भाई जो धनसिंह था वह तो रस्सी को देखनसे भी साप मान कर डरता था। सहज पत्ता हिलता देखे तो भी भयभ्रान्त होता था।

किसी समय उस नगर के करीब एक सिंह आया जानकर उस रास्ते से कोई भी मनुष्य नहीं निकलता था। तब प्रधानने राजा के पास जाकर विज्ञप्ति की कि—‘ हे

होना। उस समय सैन्य के सर्व लोक गाँवमें आये, उनको सामन्तने भोजन करावर सर्व को वस्त्रादिकका शिरपाव दे करके खुश किये।

अब अभयसिंह सामन्त को साथ लेकर पृथ्वीतिलक नगर को आया। और सामन्त सहित जाकर पृथ्वीतिलक राजा को प्रणाम किया। उसको देखकर राजा हर्षित हुआ और विचार करने लगा कि यह मनुष्य होने पर भी देवशक्ति को धारण करता है। ऐसा सोच कर अभयसिंह को एक देश प्रदान किया, और सामन्तको भोजन कराकर व शिरपाव देकर विदाय किया। वह भी राजाको नजराणा देकर व शीख लेकर अपने देशको गया।

एकदा उस नगरके उद्यानमें चार ज्ञानके धारक श्रुतसागर नामक आचार्य पधारे। यह सुन कर राजा परिवार सहित उनकी वन्दना करने को गया। देशना सुननेके पश्चात् धर्मसिंहने पूछा कि हे महाराज ! मेरे पुत्र अभयसिंह ने ऐसा कौनसा पुण्य किया है कि जिसके उदयसे यह महा साहसिक हुआ है ? और छोटे पुत्रने कौन कुकर्म किये हैं कि जिससे वह महा भीरू हुआ है।

गुरु कहने लगे कि- इसी नगरमें एक पूरण व दूसर

कटक यहाँ पर आया था और उसको मैंने जीत लिया था। उसको दूतने कहा कि—स्वामिन्! अब अभयसिंह आया है। यह श्रवण कर सामंतने कहा कि—मुखसे बढ़ाइ करनेसे क्या होगा? सिंह है या शृगाल है? उसकी परीक्षा तो संग्राममें फोरन हो जायगी। वह सुनकर दूत वापिस आया और अभयसिंह को कहा कि यह बड़ा अहंकारी है इसलिए बिना युद्ध किये वह मानेगा नहीं।

अब अभयसिंह रात्रीके समय छुप्तरीतिसे गढ का लाँघ कर सामंत राजाके महेलमें घुस गया। सामंत सोया हुआ था उसे जगा कर कहा कि, उठ! उठ! सिंह आया है उसके सामने यह सुनकर सामन्तभी उठकर सामने आया। दोनोंने युद्ध किया। अभयसिंहने सामंतको भूमि पर पटक कर बाँध लिया। तब उसकी स्त्रीने नमन करके भरथार की भिक्षा याच कर पति का छुडाया। वह अहंकार को छोड़कर अभयसिंह का सेवक हुआ।

इधर जब प्रातःकाल हुआ तो अभयसिंह को कटकमें किसीने नहीं देखा। जिससे सर्व सैन्य चिन्तातुर हुआ। उस, असेंमें एक मनुष्यने आकर कहा कि, अभयसिंहने सामंतन्य को जीत लिया है। और आप सर्व महाशयोंको उन्होंने बुलवाये हैं। तुम लोग लेश मात्र शंकाशील मत

उनकी अवगणना करे नहीं उस जीवको परभवमें पढी हुई विद्या सफल नहीं होती है-निष्फल होती है। जैसे त्रिदंडीयाने नापितसे विद्या सीख कर उस विद्या के बलसे विदेशमें जा कर त्रिदंड को आकाशमें रक्खा और गुरुका नाम गुप्त रक्खा, जिससे त्रिदंड आकाशसे गिर गया, और विद्या निष्फल हुई। यहाँ नापितकी कथा कहते है।

"राजपुर नगरमें कोइ विद्यावन्त नापित रहता था। वह विद्याके बलसे अपना छुरा आकाशमें निराधार रखता था; परन्तु लोक उसे मानते नहीं थे। एक त्रिदंडी ब्राह्मणने उसका प्रभाव देख कर विद्या सीखने का निश्चय किया। और उस नापितका वह बाह्य (दिखलाने रूप) विनय करने लगा। उसने सोचा कि किसी युक्तिसे मैं उससे विद्या ले लू तो ठीक। "अमेध्यादपि-कांचनम्" यानि अपवित्र चीजमेंसे भी सुवर्ण लेना चाहिये। ऐसा विचार कर सदैव उसकी सेवा करता और भक्ति करता। फिर उसने विद्या की याचना की, तब उसने भी सन्तुष्ट होकर विधि पूर्वक विद्या प्रदान की। उस त्रिदंडीने भी विधि पूर्वक आराध कर विद्या साध ली। फिर अपना जो त्रिदंड था, उसे आकाश मंडलमें रखकर लोगों को कौतुक दिखाता हुआ घूमने लगा लोग भी उसकी पूजा भक्ति

धरण इस नामके दो अहीर थे उनमेंसे पूरण तो बहुत ही दयावन्त था, धर्मात्मा था, सर्व जीवों की रक्षा करता था, किसी को त्रसित नहीं करता था, और दूसरा जो धरण था वह सुरचे, ताते, तीतर, मृग आदि जीवोंका पकड़ कर बाँधता था, सताता था, किसी की सुनता नहीं था, जिससे उसका अन्त किया। अत जीवरक्षाके पुण्य से पूरण का जीव तो तेरे यहाँ अमयसिंह नामक शूरवीर और भाग्यवत पुत्र हुआ। तथा धरणका जीव बहुत जो वोंका सता कर तरा धर्मसिंह नामक लघु पुत्र भारू हुआ है। ऐसी पूर्वभव सम्बन्धी वार्ता का श्रवण कर सर्वन श्रावक धर्मका स्वीकार किया। धर्माराधन करके पिता तथा दोनों पुत्र मिल कर तीनों देवलाकमें गये।"

अब बीसवीं पृच्छाका उत्तर एक गाथा करके कहतेहैं?

त्रिज्जाविन्नाणआमिच्छाविणएण गिण्हिउ जोउ
अवमन्नइआयरियंसाविज्जानिप्फलातस्स ॥२६

अर्थात्—जो जीव विद्या अथवा विज्ञान जो कला दिककी मिथ्या अर्थात् अविनयसे ग्रहण करना चाहे अथात् पढाने वाला जो आचार्य उनका नाम, गुम रख,

बहु मन्नइ आयरियविणयसमग्गोगुणेहि संजुत्तो
इहजागहियाविज्जासासफलाहोइलोगंमि ॥३७॥

अर्थात् जो जीव अपने पढ़ानेवाले आचार्यका बहुमान करता है जो विनयवंत होता है, समग्र गुणों करके युक्त होता है और इस प्रकार जो विद्या प्राप्त की होती है यह विद्या लोक में सफल होती है (३७) जिस प्रकार श्रेणिक राजाने अपने सिंहासन पर चाण्डाल को बैठा कर विनय के द्वारा अवनमन नामक विद्या सम्पादन की, वह सफल हुई। अतः यहाँ श्रेणिक राजा की कथा कहते हैं।

" राजगृही नगरी में श्रेणिक राजा राज्य करता था। उसको चेलणा नामक पट्टराणी थी। एकदा राणी का एकथंभा धवलगृह में रहने का दोहद उत्पन्न हुआ। यह बात राजाने अभयकुमार को कही। अभयकुमार ने देवता का आराधन किया। देवता प्रत्यक्ष आकर खड़ा रहा। उसके पास एकथंभा आवास करवाया। उसकी चारों ओर चार वन बनवाये। उन चारों वन में सर्व ऋतु के फलफूल सदैव मिले, ऐसा करके राणीको एकथंभा आवास में बैठा कर उसका दोहद पूर्ण किया।

करके प्रशंसा करने लगे एकदा लोगों ने पूछा कि हे स्वामिन् ! यह विद्या आपने किस गुरु के प्रसाद से प्राप्त की है ?

तब उस ब्राह्मणन लज्जासे नाबीका नाम न दिया और उसके एवज में हिमवन्तवासी विद्याधर मेरा गुरु है, उनके प्रसाद से, उनकी सेवा भक्ति करने से मुझे यह विद्या मिली है। इस प्रकार गुरु का नाम छिपाते ही उस ब्राह्मणका त्रिदंड, जो आकाशमें अद्धर रहा हुआ था, सनसनाट करता हुआ आकाश मे नीचे धरती पर आ गिरा। तब सर्व लोग हाँसी करने लगे और जैसे मान महत्व वृद्धिगत हुआ था, वैसे ही बल्कि उससे भी दुगुनी उसकी लोगों में अवहेलना होने लगी। जो लोग पूजा भक्ति करते थे उन्होंने पूजा भक्ति करना छोड़ दिया। इस प्रकार जो पुरुष विनय विना विद्या सीखते हैं गुरु का नाम गुप्त रखते हैं, गुरु की अवगराामा करते हैं, उसकी विद्या निष्फल होती है। और भवान्तर में भी उसके लिये ज्ञानप्राप्ति दुर्लभ होती है।

अब इक्कीसवीं पृच्छा का उत्तर एक गाथा द्वारा कहते हैं।

तब एक दफे चंडालने कही हुई विद्या राजा को मुखाग्र हो गई और सफल हुई। इस प्रकार विनय करके विद्या लेने से कार्य सिद्धि होती है।

अब बाइसवीं और तेइसवीं पृच्छाके उत्तर दो गाथा के द्वारा कहते हैं —

जो दाणं दाऊणं चिंतइ हा कीस मए दिन्नं।
होऊणविधणरिद्धिअचिराविहुनासए तस्स ॥३८॥
थोवे घणेविहु संतिइ देइ दाणं पवड्ढइ परेवि।
जोपुरिसोतस्सधणगोयमसंमिलइपरेजम्मे ॥३९॥

अर्थात् —जो मनुष्य दान देकर के पीछे से हृदय में ऐसी चितवना करता है कि 'हा! अरे मैंने यह दान अकारण ही कर दिया।' इस प्रकार दान दे कर पीछेसे उसका पश्चात्ताप करता है, उसके घरमें लक्ष्मी इकट्ठी ता होती है, मगर स्वल्पकाल पर्यन्त रहकर फिर निश्चयसे चली जाती है। जिस प्रकार दक्षिणमथुराका वासी धनदत्त सेठका पुत्र सुधन नामक था, उसकी लक्ष्मी निकल कर पराइ हो गई घर घर को चली गई (३८) तथा जो स्वल्प धनवान् होते हुए भी अपनी शक्ति के अनुसार खुद

उस अर्सेमें एक मातंग की स्त्री को अकाल में आम्र खानेका दोहद उत्पन्न हुआ। उसके पति मातंगने अमगमन नामक विद्या के बल से राजा के उपवन में से सब आँबेकी डाल नमाकर उन पर से फल लेकर स्त्री का दोहद पूर्ण किया। राजाने अभयकुमारको कहा कि-'आम्र वृक्षके फल रावल्ली वाडीमेंसे किसने लिये ? उस चोर को ढूंढ निकालना चाहिये।' अभयकुमारने बड़ी कुआरी कन्याकी कथा कह कर बुद्धि के बलसे उस मातंग चोरको प्रकट किया और पकड़ लिया। उसको राजाने पूछा कि कोट के भीतर मेरी वाडी है, उसके फल तूने किस प्रकार लिये ?

जब मातंगने डरकर कहा कि मैंने विद्याके बलसे लिये।, श्रेणिक राजाने कहा कि यदि तेरी विद्या मुझे देवे तो मैं तेरको क्षमा करूं। मातंगने इस बातको मान्य किया। उस समय राजाने अपने सिंहासन पर बैठे हुए ही विद्या सीखना प्रारम्भ किया। मातंग पुन पुन राजा को विद्या सुनाता मगर राजाको याद नहीं रहती। तब अभयकुमार मन्त्री ने कहा कि हे महाराज ! विद्या तो विनय करने से आती है, यह सुन कर राजाने अपने सिंहासन से नीचे उतर कर मातंग को सिंहासन पर बैठाया। और खुद मातंग के आगे दो हाथ जोड़कर विद्या सीखने को बैठा।

धनदत्त सेठ दाघज्वर से पीड़ित होकर देवशरण हुआ। उस समय उसके रिश्तेदारोंने उसके पुत्र सुधनको उसकी पाट पर बैठाया। सुधन घर के कुटुम्ब का भार निर्वहने लगा।

एकदा सुधन सुवर्ण के पाट पर स्नान करने को बैठा। आगे सुवर्ण की कुंडी पानी से भर कर सेवकों ने रखी। स्नान कर रहा कि फौरन वह कुंडी आकाश मार्गसे चली गई। स्नान करके पाटसे नीचे पैर दिया कि सोने का पाट भी आकाश मार्गसे चला गया। फिर देवपूजा करने को देवमन्दिर में गया, वहाँ पूजा करली कि फौरन देव मन्दिर तथा बिम्ब कलश आदि सर्व अदृश्य होगये। धोती का समुदाय आकाश में चला गया। फिर घर में आया, तब जहाज समुद्र में डूब जाने का समाचार मिला। फिर भोजन करनेको बैठा। आगे सुवर्ण के थाल में भोजन रक्खा। तथा सुवर्णमय ३२ कटोरे दाल, कढ़ी, शाक प्रमुखके भर कर रखे। तथा ३२ कटोरी चाँदी की रखी। ये सब चीजे भी आकाश मे चली गइ। और जब थाल आकाश मे जाने के लिये कम्पित हुआ, तब सुधनने उसे पकड़ लिया, मगर उसका केवल एकही टुकड़ा उस के हाथ मे रह गया, और थाल चला गया। इस प्रकार देखते

सुपात्र को दान देता है और दूसरेके पास से दान दिलाता है, उस पुरुष को हे गौतम ! परजन्म यानी भवान्तर में सम्यक् प्रकार से धन मिलता है। जिस प्रकार उत्तरमथुरा वासी मदनसेठ के यहाँ अकस्मात् बहुत ऋद्धि आ कर मिली (३९)

इन दोनों बाल के ऊपर सुधन और मदनसेठ की कथा कहते हैं।

"दक्षिण देश में दक्षिण मथुरा नगरी में धनदत्त नामक सेठ रहता था। वह कोटि द्रव्य का स्वामी था। उसका सुधन नामक पुत्र हुआ। वह सेठ पाँचसौ शकट करियाणा से भरकर नोकर के साथ परदेश में बेचने के लिये भेजता, वह वहाँ पर करियाणों बेच कर पुन दूसरे नये करियाणे ले आता। वैसेही कुछ न कुछ माल समुद्र मार्ग से भेजता और मगावता। और कुछ व्याजु देता था और कुछ धन तो घर के भंडार में रख छोड़ता था।

अब उत्तर मथुरा में समुद्रदत्त नामक व्यवहारिया रहता था, उसके साथ उस सेठका बहुत स्नेह या प्रीति थी। दोनों परस्पर एक दूसरे के ऊपर करियाणे बेचने के लिये भेजते थे, उस में बहुत लाभ होता था। एकदा

अत हे सेठ ! जिस लक्ष्मीके दु खसे तुम मरनेके लिये तय्यार हुए हो वह लक्ष्मी असार है, चपल है, मलिन है, अनर्थ का मूल है, विद्युत्के चमकार की भाँति हाथमेंसे चली जावे ऐसी लक्ष्मी के कारण मर कर हीरा जैसे मनुष्यभवको कौन निष्फल करे। इत्यादि उपदेश को सुन कर सेठ ने प्रतिबोध पाया। मुनि के पास दीक्षा लेकर सूत्र पढ़कर गीतार्थ हुआ, अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ। ऐसा सुधन ऋषि विहार करता हुआ उत्तर मथुरा में समुद्रदत्त सेठ के वहाँ गोचरी के निमित्त गया।

वहाँ अपन सुवर्णपाट, कूंडी, लोटा, कटोरे, थाल, प्रमुख सर्व देखे व पिछान लिये। सुवर्ण के खंडित थाल में समुद्रदत्त सेठ को जिमता हुआ देखा। इस प्रकार उस ऋषिका अपने घरमें इधर उधर घूमता हुआ और वस्तुओंको देखता हुआ देखकर सेठने पूछा कि-'महाराज ! क्या देखते हो ?' तब ऋषि ने कहा कि—हे सेठ ! ये पाट, कूंडी,कटोरे, और थाल,प्रमुख तुमने बनवाये हैं, किंवा तुम्हारे पूर्वजों ने बनवाये हैं ?' सेठने कहा कि ये सब चीजें प्रथम से ही मेरे घर में हैं। ऋषि ने कहा कि, तुम ऐसे खंडित थालमें भोजन क्यों करते हो ? सेठने कहा कि-क्या करू ? इस थाल में खड चिपकता नहीं। तब ऋषि ने कमरमें से

देखते सभी ऋद्धि चली गई। कर्म के आगे किसी का जार नहीं चल सकता। उस अर्से में एक लेनदार ने आकर कहा कि—मेरा एक लाख द्रव्य तुम्हारे पास लेना है वह दे दो। तब निधान खोल कर देखा तो सब द्रव्य राख के सदृश बना हुआ दृष्टिगोचर हुआ जिससे वह बड़ाही दुःखी हुआ।

फिर माता की आज्ञा लेकर सुवर्ण के थाल का टुकड़ा साथमें रक्खा और देशान्तर मे चला। मार्ग मे चलते हुए महाकष्ट से कायर होकर एक पर्वत के उपर चढ़ कर वहाँसे झंपापात करके मरने को तय्यार हुआ। उसे झंपापात करते हुए एक साधु ने देखा। उसने ज्ञानबल से उसका नाम जान कर उसे सुनाया कि—हे सुधनशेठ! तुम साहस मत करो, क्योंकि पर्वत पर से गिर कर अकाल मरण से तेरी व्यंतर की गति होगी यह सुन कर सुधन भी उस ज्ञानी-ऋषि के पास आया, ऋषि का वन्दना की, ऋषि ने कहा कि—कर्म किसी को छोड़ता नहीं है।

कर्म से सुदर्शन सेठ,
हरिचन्द कीनी मातंग वेठ।
मेतारज ऋषि काढी दृष्टि,
कर्मे कीना सहु पग हेठ॥ १॥

कर लड़के को खिलावे। माता रोने लगी। यह देख कर पड़ोसणने दूध, सक्कर व शालिधान्य ला दिये। जिसकी उत्तम खीर पकाकर सगम को थाली में परोस कर माता बाहर गई। उस समय पीछे से वहाँ मास-खमण के पारणे एक मुनि पधारे उनको सङ्गम ने बडेही उल्लास भाव से आनन्दित हो कर वह सर्व खीर वहरा दी। उस पुण्य के योगसे राजगृही नगरीमें गोभद्र सेठकी भद्रा नामक स्त्री की कुक्षि में वह उत्पन्न हुआ। माताको शालिक्षेत्र का स्वप्न आया, जिससे शालिभद्र ऐसा नाम दिया। जब वह तरुण हुआ, तब बत्तीस कन्या के साथ उसकी शादी की। गोभद्र सेठ दीक्षा लेकर देवता हुआ। पुत्रके ऊपर अत्यन्त स्नेह था, जिससे गोभद्र सेठ बत्तीस स्त्रियों के व शालिभद्र के लिये नित्यप्रति नये नये वस्त्राभरण भेजते रहते थे।

एकदा नेपाल देशका एक व्यापारी लक्ष मूल्य के सोलह रत्न कम्बल बेचने को लाये, उन्हें श्रेणिक राजाने नहीं लीं। परन्तु भद्रा सेठाणीने सोलह वस्त्र लेकर उन्हें फाड़कर बत्तीस टुकड़े किए। और बत्तीस वहुओंको एकेक टुकड़ा बाँट दिया। शामको सर्व पुत्रवधुओं ने पग लूछ कर फैंक दिए।

धर्म का पालन कर, अन्त में वह देवलोक में देवता हुआ और सुधनऋषि मोक्ष में गये ”

“ अब चौबीसवीं पृच्छा का उत्तर एक गाथा के द्वारा कहते हैं।

ज ज नियमणइट्ठं त त साहूण देइ सद्धाए।
दिन्नेवि नाणुतप्पइतस्स थिराहोइघणरिद्धी॥४०॥

अर्थात्-जो जो मनोज्ञ वस्तुए अपने पास होती हैं, वे सब चीजें जो पुरुष साधुको श्रद्धा करके भावपूर्वक देता है देकर उसकी अनुमोदना करता है, परन्तु पश्चात्ताप विषाद करे नहीं, उस पुरुष के वहां, विपुल ऋद्धि स्थिर होकरके रहती है। जैसे कि शालिभद्र सेठ के घरमें ऋद्धि स्थिर हाकरके रही, बत्तीस कन्या ब्याही, उनको नित्य नये नये वस्त्राभरण मिलत थे (४०) उसकी कथा कहते हैं।

“मगध देश में राजगृही नगरी के करीब शालिग्राम नामक ग्राम था। वहाँ पर धन्या गोवाल का सगम नामक पुत्र लोगों के बछडे चरा कर, पेट भरता था। एकदा पर्व के दिन माता के पास, उसने खीरकी याचना की, मगर घर में कुछभी चीज न थी, कि जिससे खीर पका

जिस से गोद में स उठकर सातवे मजले में चला गया। भद्राने राजाको भोजन करने क लिए प्रार्थना की। श्रेणिक स्नान करने को बैठा। स्नान करते हुए राजा की मुद्रिका कुए में गिर गइ। भद्रा न कूप का पानी बाहर निकल वाया। जिसमें से अनक प्रकार क अपार तेजस्वी आभूषण निकलते हुए देखे। उन आभूषणों के मुकाबले राजाको अपनी मुद्रिका निस्तेज प्रतीत हाने लगी। यह देख कर आश्चर्य चकित हाकर राजाने दासी को पूछा कि ये अमूल्य आभरण कूपमें कहाँसे आये? तब दासी ने कहा कि हमारे स्वामी तथा उनकी बत्तीस स्त्रियाँ नित्य प्रति नये नये आभूषण पहनते हैं। अगले दिन के पहने हुए आभूषण उतार कर कूप में डाल देते हैं। अत हमारे स्वामी का यह निर्माल्य है। श्रेणिक अत्यन्त आश्चर्य पाकर दान पुण्यके, यह फल है यह सोचता हुआ भाजन कर अपने महल में गया। पीछे शालिभद्र ने वैराग्य पाकर ऐसा निर्धार किया कि ३२ स्त्रियों में से नित्य प्रति एक एक स्त्री का परित्याग करना।

अब इसी गाँव में एक धन्ना नामक सेठ रहता था। जिस के साथ शालिभद्र की बेन की शादी हुई थी। वह धन्ना को स्नान कराती थी, उसे रोती हुई देख कर धन्नाने

अब श्रेणिक राजाकी पट्टराणी चेलणाने एक रत्न कम्बल लेनेके लिये बहुत आग्रह किया। श्रेणिक ने व्यापारी का बुलाया। वह बोला कि भद्रा सेठाणीको विक्रयसे दे दी। राजाने एक रत्नकम्बल लेने के लिये भद्रा सेठानी के पास आदमी भेजा। उसका भद्राने कहा कि ये तो मेरी पुत्रवधुओं ने पग लुछ कर फैंक दी हैं। मैले टुकडे पड़े हुए हैं, चाहिए सो लेलो। यह बात सुन कर आश्चर्य पाकर श्रेणिक राजा शालिभद्र को देखने के लिए उसके घर आया। तब भद्रा सेठानी सातवें मजले पर बैठे हुए शालिभद्र को कहने लगी, कि-हे वत्स! अपने यहां श्रेणिक आया है इस वास्ते तुम नीचे चलो।

पुत्र समझा कि श्रेणिक नामका कोई करियाणा होगा, इस लिये माता का कहा कि तुमही ले जा कर वखार में डलवा दो, जब लाभ मिल तब बेच डालना। माताने कहा कि यह करियाणा नहीं है, यह तो अपना राजा है। यह वचन सुनकर, शालिभद्र विचार करने लगा कि-मैं सेवक हु यह स्वामी है। अतएव मैंने पूर्णरूप से पुण्य नहीं किये। ऐसा सोचता हुआ नीचे आया और राजा को प्रणाम किया। राजाने गोदमें बैठाकर मुख चुम्बन किया। शालिभद्र राजा के पास गमगीन होगया।

एकदा श्री महावीर के साथ विहार करते हुए राजगृही नगरी में आए। पारणे के लिये भगवानने कहा कि आज तुम्हारी माता के हाथ से पारणा होगा। जिस से भद्राके घर गये मगर शरीर दुर्बल होजाने से किसी ने पिछाने नही। वापिस लौटते हुए पिछले भव की माता मिली। ऋषि को देखते ही वह हर्षित हुई और उसके स्तन में से दूध की धारा बहने लगी, अपने पास मही की मटकी थी उसका दान दिया। साधु ने भगवान को पूछा कि हमें माता के हाथ से पारणा न हुआ। भगवानने कहा कि जिसके हाथ से पारणा हुआ वह शालिभद्रकी पूर्वभव की माता थी। फिर दोनों साधुओं ने अनशन किया। भद्राको जब मालूम हुआ तब बहुत पश्चात्ताप करती हुई बत्तीस पुत्र वधुओं का साथ लेकर श्रेणिक राजाके साथ मिलकर अनशन स्थानक को आइ और साधुओं को वन्दना कर अपने घरको चली आइ। वे ऋषि सर्वार्थ सिद्ध विमानमें पहुंचे, एकावतारी होकर मोक्षमें जायेंगे। अत जो भावपूर्वक सुपात्र को दान देता है वह दिन दिन प्रति नये नये भोग विलास प्राप्त करता है।

अब पच्चीसवीं और छब्बीसवी गाथा का उत्तर देढ गाथा के द्वारा कहते हैं।

पूछा कि क्यों रोती है ? तब उसने कहा कि-मेरा भाई नित्य एक एक स्त्री का परित्याग करता है और दीक्षा लेने वाला है। उसको धन्ना ने मुस्करा कर कहा कि-तेरा भाई ऐसा कायर क्यों होगया ? बत्तीस ही स्त्रियों का एक ही साथ क्यों छोड़ नहीं देता है ? तब स्त्री बोली कि बात करना तो सहल है; परन्तु करना अति दुर्लभ, आप एक को भी छोड़ नहीं सकते हैं। धन्ना ने कहा कि मैं तेरे मुख से यही वचन निकलवाना चाहता था। अब कुछ मत कहना। जा, मैंने मेरी आठों स्त्रियों का अभीसे त्याग कर दिया है। यह सुन कर स्त्री पग में पड़ी और मनाने लगी कि महाराज ! मैंने तो हंसते हंसते कहा था। अतः आप को रोष न करना चाहिये। इत्यादि कह कर बहुत समझाया, मगर धन्ना ने कहा कि मेरे मुखमें से जो बात निकल गई, सो निकल गई, अब वह पलटेगी नहीं। ऐसा कह कर वहाँ से उठा, उठकर अपने साला के पास गया। उसे समझाकर साथ लिया और धन्ना तथा शालिभद्र इन दोनों ने मिल कर श्री महावीर के पास जाकर दीक्षा ली। दीक्षा महोत्सव श्रेणिक राजा ने कराया। दोनों साधु छठ, अठम, दशम, दुवालस, मास खमणादि तप करते हुए शरीर में अत्यन्त दुर्बल हुए।

सो शक्ती। वैसी बाहरसे आकर शीघ्र अपनी माता को मिलते। एकका देखे, एकके मुखको माता चुम्बन करती। ऐसा देख कर देदा और देमती अपने हृदय मे चिंतातुर हुए और परस्पर बात करने लगे कि— अपने तो पुत्र नहीं है, अत अपना यह सयोग, यह ऋद्धि, यह स्नेह और यह जीवित इत्यादि सर्व किस काम के हैं? किसी ने यथार्थ ही कहा है कि —

> अपुत्रस्य गृहं शून्य दिश शून्या अबांधवा।
> मूर्खस्य हृदय शून्य सर्व शून्यं दरिद्रता॥ १॥

ऐसा विचार कर पुत्र के लिए अनेक देव देवियों की मानता की। एक दिन सत्यवादी यक्ष का आराधन किया। देदा यक्ष की पूजा और उपवास करके आगे बैठा और कहा कि-जब मुझे पुत्र होगे तब मैं ऊठुगा। इस प्रकार बैठते हुए उसे ग्यारह उपवास होगये। तब यक्ष देव प्रत्यक्ष हुआ और कहने लगा कि हे सेठ! तू कष्ट किस वास्ते सहन कर रहा है? क्यों कि देव, दानव, व्यन्तर, यक्ष चाहे सो हो, परन्तु कोइ भी उपार्जन किये हुए कर्म को दूर नहीं कर सकते है। हे सेठ! तूने पूर्व जन्मान्तर में अन्तराय कर्म बांधे हुए हैं, उसमें मेरा कुछ

पसुपक्खिमाणुसाणवालेजोविहुजोयिच्छोहइपावो
सोअणवच्चोजायइअहजायइतोविपोजोवहि॥४१॥

जो होइ दयापरमो वहुपुत्तो गोयमा भवेपुरिसो

अर्थात्—जो पापी पुरुष गवादि पशुओं के बालक तथा हंस मयूर पक्षिओं के बालक तथा मनुष्यों के बालकों का अपने मातपितासे वियोग करता है वह पुरुष अनपत्य यानि सन्तानसे रहित होता है। अथवा कदापि संतति होती है तो बचती नहीं। जिस प्रकार सिद्धिवास नगरमें वर्द्धमान नामक वणिक रहता था, उसे देशल और देदा नामक दो पुत्र हुए। उनमें देशल महा दयावान् था और देदाका हृदय निर्दय था। युवावस्था प्राप्त होते देशलकी देवीनी और देदाकी देमती नामा कन्याओं के साथ शादी की। उनमें देशल धर्मकरणी करता, लक्ष्मी भी उपार्जन करता और सुख भी भोगताथा। इस प्रकार तीनों पुरुषार्थ साधता था। और देदा तो केवल लक्ष्मी उपार्जन करना और सुख भोगना इतना ही केवल साधता था परन्तु धर्म नहीं करता था। महा लोभी होनेसे धर्मकी बात भी नहीं जानता था अनुक्रमसे देशलका गुणवत पुत्र हुए। उनकी माता देवीनी अपने पुत्रोंका पालन करती, गोदमें बैठाती, परस्पर लड़ते

प्रकार सोच करते हुए वह दिवस तो गया, मगर रात्रि को अचानक बालक बीमार हो गया और जिस प्रकार पवन से दीपक बुझ जावे उसी प्रकार देखते २ बालक देव शरण हो गया। वह देख कर देदा सेठ व देमती सेठानी मूर्छित हो कर भूमि पर गिर गये। थोड़ी देर के बाद सचेत हुए और बहुत रुदन तथा आक्रन्द करने लगे, मगर गया हुआ पुत्र वापिस आया नही।

फिर बड़े भाइ देशल ने कहा कि तुम स्नान भोजन करलो। मेरे लड़के हैं वह तुम्हारे ही हैं ऐसा समझो अब अब तुम शोक करना छोड़ दो। उस समय उनके समीप होकर चार ज्ञानके धारक चारण ऋषि चलेजाते थे, वे उनके रुदन श्रवण कर वहां आए। उनको सब लोगोंने उठकर वंदना की। ऋषि ने धर्म लाभ दिया पुनः धर्मोपदेश देकर कहने लगे कि हे सेठ! तुम शोक मत करो, क्योंकि जिस जीव ने जैसा कर्म उपार्जन किया होता है वैसाही फल उसका मिलता है। यदि कोदरा नामक धान्य बोया होवे तो उसको उपज में शाल कहाँ से मिले? नीब का बीज बोवे और रायण की आशा करे तो वह कहाँ से मिले।

बल नहीं चल सकता। इस प्रकार यक्ष ने कहा तो भी सेठ वहाँ से उठा नहीं। तब यक्ष ने कहा कि कदाचित् मैं तुझे पुत्र दूंगा तो भी वह पुत्र जीवित न रहेगा। तब फिर भी तू मुझे ओलंभा (उपालंभ) देगा। सेठ ने कहा कि एक दफ पुत्र होवे ऐसा कीजिये। फिर चाहे सो हो। यक्ष भी उस बात को कह कर अपने स्थानक चला गया।

सेठ ने घर में आकर अपनी स्त्री के पास बात कही। स्त्री और सेठ ने कुछ हर्षित और कुछ विषाद पाते हुए पारणा किया। अन्यदा गर्भाधान हुआ। पुत्र प्राप्ति भी हुई, जिसकी बधाई सुनकर सेठ हर्षित हुए। वह पुत्र दीर्घजीवी होवे, इस लिए उसे तुला में तोल कर उसका नाम भी तोला रखा। छट्ठी दशोटण प्रमुख करते हुए स्वजनों को जिमा कर दान मान दिये। फिर यक्ष को भेटने के लिये बली, फूल प्रमुख लेकर व बालक को भी साथ लेकर यक्षके भुवन में गये। वहाँ द्वार बन्द किये हुए थे। उसे खोलने के लिये अनेक उपाय किये, मगर यक्ष ने दर्शन न दिये। तब सर्व वापिस घर को लौट आये। सेठ बोले कि यक्ष ने कहा था कि लड़का जीवित न रहेगा'सो शायद वैसा' ही हो जाय? उस

प्रकार सोच करते हुए वह दिवस तो गया, मगर रात्रि को अचानक बालक बीमार हो गया और जिस प्रकार पवन से दीपक बुझ जावे उसी प्रकार देखते २ बालक देव शरण हो गया। वह देख कर देदा सेठ व देमती सेठानी मूर्छित हो कर भूमि पर गिर गये। थोड़ी देर के बाद सचेत हुए और बहुत रुदन तथा आक्रन्द करने लगे, मगर गया हुआ पुत्र वापिस आया नहीं।

फिर बड़े भाइ देशल ने कहा कि तुम स्नान भोजन करलो। मेरे लड़के हैं वह तुम्हारे ही हैं ऐसा समझो अब अब तुम शोक करना छोड़ दो। उस समय उनके समीप होकर चार ज्ञानके धारक चारण ऋषि चलेजाते थे, वे उनके रुदन श्रवण कर वहा आए। उनको सब लोगोंने उठ कर वन्दना की। ऋषि ने धर्म लाभ दिया पुन धर्मोपदेश देकर कहने लगे कि हे सेठ! तुम शोक मत करो, क्योंकि जिस जीव ने जैसा कर्म उपार्जन किया होता है वैसाही फल उसका मिलता है। यदि कोदरा नामक धान्य बोया होवे तो उसकी उपज में शाल कहाँ से मिले? नीब का बीज बोने और रायण की आशा करे तो वह कहाँ से मिले।

सेठ ने पूछा कि महाराज ! मेरे दोनों पुत्रों ने पूर्व भव में किस किस प्रकार के कर्म किये हैं ? जिनके योगसे एक को अनेक सन्तान हुए हैं और दूसरेको सन्तान है ही नहीं। तब मुनि कहने लगे कि हे सेठ ! इसी नगरी में इस भवसे पिछले तीसरे भव में विल्हण और सिल्हण नामके दो कुलपुत्र रहते थे, उनमें बड़ा भाई तो बड़ा धर्मात्मा और दयावन्त था और छोटा भाई तो नित्य वन में जाकर मृगनी और उनके बालक का वियोग कराता था। हंस, तोते, मयूर, आदि पक्षियों को उनके बालक से अलग करता व पकड़ कर पिंजरे में डाल कर बेचता था। वैसेही मनुष्य के बालकों को भी एक गांव में से लेकर दूसरे गाँव में जाकर बेचता था। इस प्रकार धन के लाभ से पाप करता था, उसको ऐसा करने से रोकने के लिये बहुत सज्जनों ने प्रयत्न किया, तथापि वह दुष्ट कर्म से पीछे न हटा दुर्व्यसन नहीं छोड़ा। जिस का जैसा स्वभाव होता है वह कदापि स्वभाव को नहीं छोड़ता है।

एक दिन उसने किसी क्षत्रियके बालककी बेचने के लिये चुपके से उठाया। मगर उसके मात पिताने देख लिया और शीघ्र उसे पकड़ कर बहुतही पीटा और छेदन भेदन किया।

उसकी वेदना से रौद्रध्यान पूर्वक मृत्यु पाकर पहली नरक में गया। बडा भाइ विल्हण अपने भाइ की मृत्यु सुन कर वैराग्य पा कर व अनशन व्रत लेकर समाधि मरण के अनन्तर सौधर्म देवलोकमें देवता हुआ। वहाँसे चव कर तेरा देशल नामक बड़ा पुत्र हुआ है। उसने पूर्वभव में भूखे प्यासे पर दयाकी थी जिस पुण्य के याग से उसको अनेक गुणवत पुत्रों की प्राप्ति हुइ है। और तिल्हण का जीव नरक से निकल कर तेरा ददा नामक छोटा पुत्र हुआ है। उस ने पूर्वभव में मनुष्य और तिर्यच के बालको का अपने मातापितासे वियोग कराया था जिससे उसके सन्तति नहीं होती थी। ऐसे गुरु के वचन सुन कर दोनों भाइयोंको जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। जिससे पूर्व के भव देखने में आए। सब वैराग्य पाकर समकित मूल बारह व्रत अङ्गीकार किये। और चारण मुनि आकाश मार्गमें चलते गये। दीर्घकाल पर्यन्त श्रावक धर्म पाल कर फिर दोनों भाइयों ने दीक्षा ली। और समाधि मरणसे मरकर देवलोकमें देवता हुए। कहाहै; —

जीवदया जिनवर कही, जे पाले नर नार।
पुत्र होवे शूरा सबल, तेहने रंग मझार॥

अब सत्ताइसवें और अट्ठाइसवें प्रश्न के उत्तर दट गाथा के द्वारा कहते हैं।

असुयजोभणइसुयसो वहिरो होइपरजम्मे ॥४२॥
अद्दिट्ठ चियदिट्ठ जोकिरभासिज्जा कहइअमूढप्पा।
सो जच्च धोजायइ,गोयमनियकम्मदोसेण ॥४३॥

अर्थात्—जो पुरुष अश्रुत यानि अनसुनेको सुना कहे, अर्थात् जो बात कहिं से सुनी भी न हो तथापि ऐसा कहे कि यह बात मैंने सुनी है, इसके अतिरिक्त जो दूसरे के दोष का प्रगट करे वह जीव निश्चय बधिर होता है। (४२)

यथा, जो पुरुष अनदेखी वस्तु को देखी कहे, इस प्रकार जो मूढात्मा पुरुष धर्म की उपेक्षा करता हुआ भाषण करे, वह जीव हे गौतम ! मरकर अपने कर्म के दोष से भवान्तर में जात्यन्ध होता है (४८) जिस प्रकार-महेन्द्रपुर का रहने वाला गुणदेव सेठ का पुत्र वीरम था, वह पूर्वकृत पाप के उदय से जन्म पर्यन्त बधिर जात्यन्ध त्रींद्रिय सदृश हुआ, अर्थात् कान और नेत्र रहित मानो त्रींद्रिय जैसा हुआ। यहाँ पर वीरम की कथा कहते हैं —

"महेन्द्रपुर नगर में गुणदेव नामक सेठ रहता था, उसकी गायत्री नामक स्त्री थी। उसे बहुत दिनोंके पश्चात् पुत्र हुआ परन्तु वह कर्म के योग से जन्मान्ध और बधिर हुआ। जिससे बधाइ देना तो बाजु पर रहा, मगर उस लडके का नाम संस्करण भी नहीं किया। वह अन्ध बधिर इस नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसकी बाल्यावस्था व्यतीत हो गई और यौवनावस्था प्राप्त हुई तब उस के मात पिता ने मोह के वशीभूत होकर जितने २ मंत्र तंत्र थे वे सब किये, कुछ बाकी न रखा। वैसेही निमित्तिया, ज्ञानी, जोशी, चूडामणीयादिक सब सिद्ध पुरुषों को पूछा, मंडल बैठाये, दीपावतार, अंगुष्टावतार, पात्रावतार देखे। तथा ग्रह पूजा शान्ति कर्म कराय, पादर देवता की मानता की, यक्षकी सेवा की, क्षेत्रपालकी पूजा, पुत्रके मादसे ऐसा कोई देवस्थान शेष न रहा कि जिस स्थानको उसके मातपितान पूछे व पूजे बिना छोड दिया हो, परन्तु वह सर्व प्रयास जिस प्रकार उखर भूमिमें बोया हुआ बीज निष्फल होवे, उसी प्रकार निष्फल हुआ। अनेक वैद्यों के औषध भी किये, परन्तु वह लड़का अच्छा न हुआ। आँखों से कुछ देखे नहीं व कान से कुछ सुने नहीं, जिससे भोजन पान कराना पडे वह भी इसारे से कराते। मात पिता ने सोचा

कि हमने पूर्वभवमें न मालूम कैसे पाप किये होंगे कि जिससे यह पुत्ररूपमें सदैवका शल्यही हुआ। ऐसे पुत्रक होनेकी अपेक्षा न होना ही अच्छा, और यह पुत्र जीवित रह इसकी अपेक्षा मृत्यु पावे तो भी अच्छा। ऐसा बार बार विचार करते।

एक दफे कोई ज्ञानी महाराज वन में पधारे, उनको वन्दना करनेके लिये सब लोग गये। वन्दना कर बैठे, तब ज्ञानबलसे जान कर गुरु बोले कि हे गुणदेव सेठ ! तुम तुम्हारे अंधवधिर लड़के के लिये बहुत दुःखी मत हो क्योंकि किये हुए कर्म इन्द्र से भी दूर नहीं हो सकते हैं। अपने २ किये हुए पुण्य पाप सब कोई भोगते हैं, ऐसी गुरुकी वाणी सुन कर सब लोग कहने लगे कि, देखो इन मुनि महाराजका कैसा ज्ञान है ? कैसा परहितचिंतन है ? कैसा मैत्रीभाव है ? इत्यादि प्रशंसा करने लगे।

फिर सेठने पूछा कि हे महाराज ! किस पापकर्म के उदयसे मेरे पुत्रका अंधत्व और बधिरत्वकी प्राप्ति हुई है तब ज्ञानी गुरु बोले कि इसी नगर में वीरम नामक कुनबी रहता था, वह महा अधर्मी असत्यभाषी, अन्यायी, परके दोषोंका सुननेवाला, परदोष प्रकाशक, परनिंदा

करने वाला और कूडे कलंक का चढ़ानेवाला इत्यादि दुष्ट कर्मों का करने वाला था।

एक दिन गाँवके राजाके साथ किसी निकटवर्ती राज्यके राजा को वैर हुआ। उसका निरन्तर राजा को भय रहता था। उस समय में दो पुरुषोंको अन्योऽन्य गुप्त बातें करते देखकर बीरम ने कोटवालके पास जाकर कहा कि, अमुक दो शख्स शत्रु राजाको यहाँ बुलाने की बातें कर रहे थे। यह बात श्रवण कर कोटवानने उन दोनों शख्सों को पकड़ कर राजाके समक्ष खड़े किये। राजा के पूछने से वह कहने लगे कि महाराज ! हम हमारे घर सम्बन्धी बातें कर रहे थे, हम शपथ पूर्वक कहते हैं कि कदापि स्वप्न में भी हमने हमारे ठाकुर का बुरा चिन्तन नहीं किया है। ऐसी उनकी बात सुन कर राजा ने बीरम को बुलाकर पूछा, तब धूर्त, पापी, दुष्ट चित्त वाला बीरम बोला कि, महाराज ! यह बात बिलकुल ही सची है। मैंने अपने कान से सुनी है। राजा ने भी उसका कथन सत्य मानकर उन दोनोंको दण्डित किये।

फिर एक दफे बीरम का पड़ोसी ग्रामान्तर को गया था, वह वापिस घरको आता था। उसे मार्ग में बीरम

मिला। पड़ोसी ने बीरम को अपने घर सम्बन्धी सुख स माधि के समाचार पूछे। तब दुष्ट बीरम ने कहा कि, कामदेव नामक वणिक तुम्हारे घर में निरन्तर आता है और तुम्हारी स्त्री उसके साथ बहुत स्नेह करती है, रमती है। यह बात सुन कर सेठ कामदेव के ऊपर को पित हुआ, और राजा के समीप जाकर सब बात कही। राजाने कामदेव को बुलाकर उसका सर्वस्व लूटकर द डित किया।

बीरम ऐसा पाप करता, व असत्य बोलता, परनिंदा करता व लोगों के ऊपर खोटे कलक चढ़ाता था। एक दिन किसी क्षत्रिय ने उसको अच्छी तरह पीटा जिसकी पीड़ा से बहुत दिनों तक दु ख भाग कर मृत्यु पाकर तेर यहाँ पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ है। वह अनसुना व अनदखा जनापवाद बाला है, जिससे जन्मान्ध और बधिर आ है। यह जीव बहुत ससार रुलेगा। ऐसी बात गुरुमुख से श्रवण कर मातपिता धर्मकरने में प्रवृत्त हुए। और अन्ध बधिर कष्ट सहन करता हुआ मरकर दुर्गति में पहुंचा ठीक ही है —

असमजस बोले घणु, परने दिये कलक।
ते मूरख किम छूटशे, पापी हुआ निश्शक ॥१॥

अब गुनतीसवीं पृच्छा का उत्तर एक गाथा के द्वारा कहते हैं —

उचिठ्ठमसुन्दरय भत्तंतहपाणियच जो देइ ।
साहूणं जाणमाणो भुत्तपि न जिज्जएतस्स ॥४४॥

अर्थात्—जो पुरुष उच्छिष्ट, झूठे, बिगड़े हुए, ऐसे अशुभ आहार जो किसी भी काम में न आवे ऐसे भात पानी जान बूझकर साधु मुनिराजको देता है उस पुरुषको खाया हुआ अन्न हजम होता नहीं अर्थात् अजीर्णका रोग होता है (४९) जिस प्रकार श्रीवासुपूज्यस्वामी के पुत्र मघवा की पुत्री रोहिणी थी वह पूर्वभवमें दुर्गंधा नाम से प्रसिद्ध हुई, क्षुधादिक रोग से पीड़ित हुई । अब उसने अनेक भवके पहले कडुआ तुंबा बहराया था, उस की कथा कहते हैं —

"चम्पा नगरीमें श्रीवासुपूज्यस्वामी का पुत्र मघवा नामक राजा राज्य करता था । उसकी सदाचारिणी और सुशीला लखमणा नामा राणी थी। उसको आठ पुत्र हुए। ऊपर एक रोहिणी नामा पुत्री हुई । वह माता पिताको अत्यन्त वल्लभायी, अत उसके जन्मके समय राजाने बहुत

दान मान दिये। वह बड़ी हुई और चौसठ कलाएं सीखी। रूपवत, लावण्यवती, सौभाग्यवती और गुणवती हुई। उसे यौवनावस्था प्राप्त हुई देख कर राजा चिंतन करने लगा कि—इसके योग्य वर मिले तो अच्छा। अत स्वयम्बर मंडप रचाया जाय। यह लड़की मनोज्ञ वरको पसन्द कर ले ता फिर पश्चात्ताप न हो। ऐसा विचार कर स्वयंवर मंडप रचाया। कुरु, कौशल, लाट, कर्णाट, गौड, वैराट, मेदपाट, नागपुर, चौड द्राविड, मगध, मालव, सिन्धु, नेपाल, डाहल, कांकण, सौराष्ट्र, गुर्जर, जालधर आदिक चारों दिशाओंमें से राजकुमारों का बुलाये। सर्व राजा स्वयंवर में आकर बैठे। उसी समय रोहिणी राजकुमारी भी स्नान विलेपन करके क्षीरोदक श्वेतवस्त्र पहन कर हीरा, मोती, माणिक के आभरण स अलकृत होकर माना देवलाकमें से ही उतर कर आइ हो एसी अप्सरा के सदृश सुरूपा रोहिणी पालखी में बैठकर सखियोंके वृन्द से परिवेष्टित हो कर वहाँ आयी। वहाँ प्रतिहारी दासी ने राजकुमारों के नाम, गोत्र, गुण, बल, देश, गाम, सीम पृथक २ वर्णन करके कह सुनाये व समझाये। अन्त में राजकुमारी ने नागपुर के वीतशोक राजाके अशोक नामक कुमार के कंठ में वरमाला आरोपित की। योग्यवर पसंद

करने से सर्वको हर्ष हुआ। पिता ने विवाह किया। दूसरे सर्व राजाको हाथी, घोड़े, वस्त्र, भोजन और तंबोल दे कर सबको सम्मानित किये। सब अपने २ स्थानक को गये। तथा अशोक कुमारको भी सुवर्ण मोतीके आभरण प्रमुख के दान मान देकर रोहिणी सहित नागपुर को पहुचाया। वहां वीतशोक राजा ने भी शुभ दिन को नगर में प्रवेश करने का महोत्सव किया।

कुछ दिनों के वाद अशोककुवर को राज्यासन पर बैठा कर वीतशोक राजा ने दीक्षा ली। अब अशोक राजा को राज्य सम्पदा तथा राणी समेत सुख भोगते हुए गजेन्द्र के सदृश आठ पुत्र हुए और चार पुत्रिए हुई। एक दिन राजा रानी दोनों सातवें मन्जल पर गोखमें लोक पाल पुत्र का गोद में लेकर बैठे थे। उस अर्से में कोइ एक स्त्री छाती पीटती, विलाप करती, रोती हुइ और पुत्र के गुण बालती दैव को ओलंभा देती हुइ निकली। उसे देखकर रोहिणी ने राजा से पूछा कि, हे स्वामिन्! यह किस किसम का नाटक कर रही है? राजा ने कहा, हे रानी! तू धन, यौवन, राज्य, मन्दिर, भरतार, प्रासाद, और पुत्रादिक से पूरण होकर अहकार मत कर। यहां

तद्दा मत बोल । रानी बोली, स्वामिन । रीस मत करो। मुझे कुछ अहंकार नही है । मैंने ऐसा नाटक कभी देखा न था, जिससे आप को पूछा है । राजा ने कहा कि देख, तेरेको भी मैं रुदन करना सीखाता हूं । ऐसा कह कर रानी की गोद में से बालक को लेकर दोनों हाथों के द्वारा गवाक्ष के बाहर झूलाते हुए नीचे डाल दिया । यह देख कर सर्व लोग कोलाहल करन लगे, परतु रोहिणी के मन में कुछ भी दुख न हुआ । पुत्रको पडने हुए नगर देवता ने पकड कर सिंहासन पर बैठाया । यह देख कर सब लोग हर्षित हुए और राजा कहन लगे कि हे रोहिणी तू धन्य--कृतपुण्य है । जिससे तू दु ख की बात भी नहीं जानती है ।

एकदफे श्रीवासुपूज्यस्वामीके सुवर्णकुम्भ और रुप कुम्भ नामक दो शिष्य-साधु चार ज्ञान के धारक, छट्ठ, अट्ठम तप करते हुए वहाँ आए । राजा राणी पुत्र प्रमुख सर्व परिवार वन्दन करने को गये । गुरुने धर्मलाभ देकर धर्मदेशना दी । फिर राजा ने पूछा, हे भगवन् ! मेरी रोहिणी राणी ने क्या तप किया है, कि जिस के योग से वह दु ख की बात भी नहीं जानती है ? । फिर मेरा भी

उसके ऊपर अत्यन्त स्नेह है उसका कारण क्या है? इसके अलावा इसके पुत्र भी बहुत गुणवन्त हुए हैं उस का हेतु भी क्या है? सो कहिये।

गुरु कहने लगे कि हे राजन्! इसी नगर में धनमित्र सेठ की धनमित्रा स्त्री थी, उसको कुरूपिणी दुर्भागिणी ऐसी दुर्गन्धा नामक पुत्री हुई। वह जब यौवनावस्थाको प्राप्त हुई तब पिता ने उसका विवाह करने के लिये एक कोटिद्रव्य देने का निश्चय किया, तथापि किसी रंक जैसे मनुष्यने भी उसके साथ शादी करनेका मन नहीं किया। उस अर्से में एक श्रीषेण नामक चारको मारने के लिये राजकर्मचारी लोग वधस्थल प्रति लेजाते थे, उसे छुडाया और अपने घरमें रखकर उसके साथ अपनी पुत्री की शादी कर दी। वह चोर भी दुर्गन्धा के शरीर की दुर्गन्ध सहन न होने से रात्रिके समय गुपचुप भाग गया। तब सेठ खेद करता हुआ कहने लगा कि-कर्म के आगे किसी का जोर नहीं चलता है। पुत्री को कहा-तू घर में रह और दान पुण्य कर। वह पुत्री दान करने की इच्छा करती परन्तु उसके हाथ का दान भी कोइ लेता नहीं।

एक दिन ज्ञानी मुनिको दुर्गन्धा सम्बन्धी बात पूछने

से उन्होंने कहा कि गिरिनार पर्वतक पास गिरि नगरी में पृथ्वीपाल राजा रहताथा। उसकी रानीका नाम सिद्धिमती है। एकदा राजा रानी दोनों बनमें क्रीडा करने को गए। उस अर्से में गुणसागर नामक एक मुनि मासखमणकर पारणाके दिन गौचरी करने को नगरमे जाते थे। उन्हें देखकर राजाने भक्तिपूर्वक वंदना नमस्कार करके रानी को कहा कि यह जंगमतीर्थ है उनको निर्दोष आहार पानी देकर लाभ उठाओ। रानी की इच्छा न होते हुए भी उनका वापिस लौटना पड़ा। रानी मन में विचार करने लगी कि इस मूंडने आकर मेरी क्रीड़ा में विघ्न डाला। जिससे क्रोधित होकर एक कडुआ तुम्बा साधु को वहराया। साधु ने विचार किया कि यह आहार जहाँ कहीं मैं परठूंगा वहाँ अनेक जीव मर जायेंगे। ऐसा सोचकर खुद ही वह कड़ुतुम्बका शाक खा गये और कडु तुम्बाके विष प्रयोग से शुभ ध्यान में मृत्यु पाकर देवलोक में देवता हुआ। पीछे से राजा को यह बात अवगत हुई। राजा ने रानी को घर से बाहर निकाल दी। रानी को जंगल में भटकते हुए सातवे दिनको कुष्ट रोग निकला। जिससे अत्यन्त पीडित हुई और अन्त में मरकर छट्ठी नरक में गई। वहाँ से मर कर तिर्यंच में उत्पन्न हुई

पुन नरक में गई। इस प्रकार सातों नर्क में क्रमश दुख भोगकर सर्पिणी, ऊंटणी, मुर्गी, शृगालिनी, सूयरी, गिरोली, उदरी (मुर्गी), जलो, चाँडालिणी, रासभी प्रमुख के अवतार उसने लिए। एकदा गाय के जन्म में मरते समय नवकार मंत्र सुनकर सेठ के घर में दुर्गन्धा पुत्रीरूप उत्पन्न हुई। वहाँ निकाचित कर्म भोगते हुए स्वल्प कर्म शेष रहे, तब ज्ञानी की देशना सुनने से जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। पूर्व के भव देखे। तब दुर्गन्धा ने हाथ जोड़कर पूछा कि महाराज ! इस दुख से मुक्ति होवे ऐसा उपाय बतलाइये। गुरुने कहाकि-इस दुखको मिटाने वाला रोहिणी तप करो। उस तपका विधि मैं बतलाता हूं सो ध्यान देकर सुनो। सात वर्ष और सात मास पर्यन्त रोहिणी नक्षत्र के दिन उपवास करना। श्रीवासुपूज्यकी पूजा करना। तप तपते हुए शुभ ध्यान करना। उसके प्रभाव से अच्छा होगा। अगामी भव में राजा की रानी होगी। वह सुख भोगकर श्रीवासुपूज्य के तीर्थ में मोक्ष में जायगी। तप पूर्ण होने पर उजमणा करना। श्री जिन प्रासाद कराना, श्रीवासुपुज्यजीकी रत्नमयी प्रतिमा कराना। उनको सुवर्ण व मोती के आभरण कराके चढ़ाना। तथा स्नान, विलेपन, कुंकुम, कपूर आदि

सुगंधी द्रव्य से पूजा करना। श्रीसंघ की भक्ति करना। अमारी प्रवर्तावना। दीनजनों का दुःख से मुक्त करना। स्वामी वात्सल्य, संघ पूजा करना, सिद्धांत लिखाना। इस तप के करने से सुगंध राजा के भांति सब दुःख नष्ट हो जायंगे। तब दुर्गन्धाने पूछा कि सुगंध राजा कौन हुआ है। उसका वृत्तान्त कहिये।

गुरुने कहा — सिंहपुर नगर में सिंहसेन राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम कनक प्रभा है उसे एक पुत्र हुआ जो अत्यन्त ही दुर्गन्धयुक्त था, जिससे वह सब को अप्रिय हुआ। एक दफे उस नगरी में पद्मप्रभा स्वामी समोसरे। वहाँ कुटुम्ब परिवार सह जा कर राजा ने द्विकर आद वन्दना नमस्कार करके पृच्छा की कि हे भगवन्! मेरा पुत्र दुर्गन्ध हुआ उसका कारण क्या? उसने पूर्व भव में कैसे कैसे कर्म किये होंगे? तब भगवान् कहने लगे कि, नागपुर से बारह योजन की दूरी पर नील पर्वत में एक शिला के ऊपर मासोपवासी साधु धर्मध्यान करते थे। वहाँ उस साधु के प्रभाव से आहेडी को शिकार नहीं मिलता था, जिससे आहेडी ने साधु के ऊपर रोष करके उसका उपद्रव करने का निश्चय किया। जब मास-खमण पूर्ण हुआ तब साधु गाँव में एषणार्थ पधारे पीछे

से व्याध ने आकर उस शिला के नीचे काष्ट डाल कर अग्नि जलाया। साधु भी गोचरी करके फिर उस शिला पर आकर बैठे। उसको नीचे से ताप परिताप होने लगा। साधुने शुभ ध्यानारूढ होकर समभावपूर्वक उष्ण परिसह सहन किया और केवल ज्ञान पाकर वे मोक्षमें गये। इधर वह व्याध दुष्ट कर्मसे कुष्ट रोगी हुआ। मरकर सातवी नरकमें गया। फिर सर्प होकर पाँचवीं नरक में गया। पुन: सिंह होकर चौथी नरक में गया। बाद में चित्रक होकर ती सरी नरक में गया। फिर मार्जार होकर दूसरी नरक में गया। तत्पश्चात् उलूक होकर प्रथम नरकमें गया। इस प्रकार भवभ्रमण करता हुआ एकदा दरिद्री गोवाल हुआ। पशुपालन का व्यवसाय करता हुआ नागोरी श्रावक के पाससे नवकार मंत्र सीखा। एकदफा वन में वह सोगया था उस समय दावाग्नि जलता हुआ उसके ऊपर आगिरा। जिस से वह मर गया। मरते समय नवकार मंत्र का स्मरण किया जिसके प्रभाव से तेरा पुत्र हुआ। उसका दुर्गन्धी शरीर कर्मके दोष से हुआ है। इस प्रकार पूर्वभव सुनतेही उस दुर्गन्धकुमरको जातिस्मरणज्ञान उत्पन्न हुआ। दु:खकी स्मृत होनेसे भयभीत हुआ। तब भगवन्तको वंदन कर पूछने लगा कि—मैं इस दोष से कैसे मुक्त होउंगा ?

उसका उपाय कहिये। तब जिनेश्वर ने कहा, रोहिणी का तप कर, जिससे सबप्रकार से निराबाध होगा। फिर उस राजपुत्र ने रोहिणी तप किया। जिससे उसका शरीर सुगन्धमय हुआ। अतः हे दुर्गन्धा ! तू भी यह तप कर। उसके प्रभाव से सुगन्ध कुमर की तरह तेरे सर्व दुःख नष्ट होंगे। ऐसा श्रवण कर उस दुर्गंधाने रोहिणी तप अङ्गीकार किया। विधि पूर्वक शुभ ध्यान से तपस्या व आत्मा की निन्दा करते हुए दुर्गन्धी को जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। जिसके योगसे पूर्वभव स्मृति गोचर हुआ, तबतो फिर भी अधिक रूपसे तप करने लगी। आयु पूर्ण होने से शुभध्यान पूर्वक मृत्यु पाकर देवलोक मे देवता रूप से उत्पन्न हुई। वहाँ से चवकर यहाँ चम्पा नगीरी में मघवा राजा की पुत्री हुई। उसका नाम रोहिणी रक्खा गया। उसके साथ तेरी शादी हुई। उसने बहुत दान दिया है अतएव वह तुम्हारी पट्टराणी हुई है। उसने पूर्वभव मे रोहिणी तप किया है जिसके प्रभाव से दुःख क्या चीज है? वह भी नहीं जानती है। उसने उजमणा (उत्सव) किया है जिससे वह ऋद्धिवन्त हुई है। फिर हे राजन् ! इस सिंहसेन राजा ने अपने सुगंध कुमर को राज्यपाट देकर दीक्षा ली। सुगंध राजा राज्य

करता हुआ व जैनधर्म का पालन करता हुआ सम्यकनया धर्मकृत्य करके मृत्यु पाकर देवलोक में गया। वहाँ से चव कर पुष्कलावती विजय में पुन्डरगिणी नगरी में बिमल कीर्ति राजाके वहाँ अर्ककीर्ति नामक राजा चक्रवर्ति पणे उत्पन्न हुआ। वहाँ राज्य पालकर व जितशत्रु साधुके पास दीक्षा लेकर यहाँ तू अशोक नामक राजा हुआ है। तेरी राणी और तू—दोनों ने मिलकर पूर्वभव में एकमनहोकर यही रोहिणी तप किया था, अत तेरा स्नेह उसके ऊपर बहुत है। पुन राजा ने पूछा कि हे स्वामिन ! मेरी स्त्री को आठ पुत्र और चार पुत्रिए हुई वे उसके कौनसे पुण्योदय से हुई ? तब गुरु बोले कि हे महाभाग्य ! उनमें से सात पुत्र ता पूर्वभवमें मथुरानगरी में एक अग्निशर्मा ब्राह्मण भिक्षुक रहता था, उसके वहाँ पुत्र रूप से उत्पन्न हुए थे। वे दरिद्री कुल में उत्पन्न हुए, जिससे सातों पुत्र भिक्षा माँगने को जाते थे, परन्तु उनको कोई अपने स्थान पर बैठने नहीं देता, जहाँ जाते वहाँ से बाहर निकाल देते। इस प्रकार वे पुत्र गाँव गाँव में भ्रमण करते व भीक माँगते हुए एकदा पाटली पुरमे गये। वहाँ उन्होंने एक वाडी मे राजा एवम् प्रधान के पुत्र को अनके अमूल्य आभरण पहनकर खेलते हुए देखे, जिस से

मन में आश्चर्य पाये। तब बड़े भाइ ने कहा कि, देखो विधाता ने कैसा अन्तर किया है ? ये लड़के वांछित सुख भोगते हैं और हमने भिखा माँगते हुए घर घरमें भटकते हैं। यह सुन कर छोटा भाई बोला कि, यह दशान्तरम अपने किसको दवें ! उन्होंने पूर्वभव में पुण्य किये हैं, जिसके फल वे भोगते हैं, और अपन पुण्यहीन हैं जिससे घर घर भीख माँगते फिरते हैं। वहाँ से घूमते २ वन में गये। वहाँ एक साधु मुनिराज काउसग्ग ध्यान में स्थित थे। उनके पास आकर खड़े रहे। साधु ने भी काउसग्ग पार कर के धर्मलाभ होकर उनको धर्मदेशना दी। यह सुनकर सातों भाइयों ने वैराग्य पाकर दीक्षा ली चारित्र पाल कर देवलोक में गये। वहाँ से च्यव कर तेरे यहाँ पुत्र रूप से उत्पन्न हुए हैं। और आठवाँ पुत्र जो वैताढ्य पर्वत पर मदनक नामक विद्याधर था, वह नंदीश्वर द्वीप में शाश्वत जिन प्रतिमा की पूजा, यात्रा और धर्म का सेवन करता था, वह मृत्यु पाकर सौधर्म स्वर्लोक में देव हुआ। वहाँ से चयकर तेरा लोहजङ्घ नामक आठवाँ पुत्र हुआ है। जिसको सातवीं मञ्जला ने तुमें गिराया और देवताने बचाया था। और जो तेरी चार पुत्रियें हैं, वे पूर्वभवमें वैताढ्य पर्वतमें विद्याधर राजाकी पुत्रियाँ थीं।

अनुक्रम मे यौवनावस्था को प्राप्त हुई तब एकदा बागमें क्रीड़ा करने को गइ, वहाँ साधुको देखे। साधुने उनको कहा कि हे कुमारिकाओ ! तुम धर्म करो। तब उन्होंने कहा, हमसे धर्म करणी नहीं होती। फिर साधुने कहा, तुम्हारा आयुष्य स्वल्प रहा है, अत धर्मकरणी में प्रमाद मत करो। यह सुनकर उन पुत्रियों ने पूछा कि, हमारा आयुष्य कितना बाकी रहा है ? साधु ने कहा, आठ प्रहर शेष रहा है। पुत्रियाँ कहने लगी, इतने अल्प कालमें क्या पुराय करें ? मुनिने कहा आजही शुक्लापंचमी है अत ज्ञान पचमी का तप करो। ऐसा करनेस तुम सुखी हो जाओगी। कहा है कि —

जे नाणपचमिवय उत्तम जीवा कुणंति भावजुया।
उवभुं ज अणुवमसुह पावंति केवलं नाण॥

ऐसा उपदेश सुनकर उन पुत्रियों ने घरमें आ कर मात पिता के आगे बात कही। आज्ञा लेकर, गुरुके दर्शन से आजका दिन सफल मानकर देवपूजा की, पुराय की अनुमोदना की और पचखाण लेकर अपनी आत्माको कृतार्थ माना। वे चारों पुत्रिएं एकही स्थान मे बैठी थीं। उस अर्से में विद्युत्पात हुआ, जिससे चारों पुत्रिएं मृत्यु पाकर देवता हुई। वहाँ से चवकर तेरी पुत्रिएं हुई हैं। केवल एकही

दिन तप करने का यह फल हुआ। यह बात सुनते ही राजा, रानी और उनके पुत्र-पुत्रियों को जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। पूर्वके भव याद आय, जिसमे वैराग्य पाकर श्रावकधर्म अङ्गीकार किया और अपने घरको आये। फिर एक दफे वासुपूज्य भगवान् आकर समोसरे। उनको राजा तथा रोहिणी राणी परिवार सहित वंदना करने को गये। वहाँ प्रभुकी देशना सुनकर घरको आये और पुत्रको राज्यपाट देकर, सात क्षेत्रों में धन लगाया और चारित्र अङ्गीकार कर, दोनों मोक्ष मे गये। कहा है —

रोहिणी पंचमी तप तणाँ गिरुवाँ ए फल जाण।
दुःख न होय सुख हाय सदा बोले केवली वाण ॥१॥

अब तीसवीं गाथा का उत्तर एक गाथा के द्वारा कहते हैं —

महुघाय अग्गिदाह अर्क वा जो करेइ पाणीय।
वालारामविणासीसो कुट्ठी जायए पुरिसो॥४५॥

अर्थात्—जो पुरुष, मध और मधपुडा गिरावे, महुपालका आरम्भ करे, तथा अग्निदाह यानि दावानल मकदावे

अथवा प्राणियों को अङ्कित करे लछित करे, पशुओं को डाम दे, तथा सूक्ष्म वनस्पतिकायका विनाश करे, कूणी वनस्पति को छेदे, भेदे, तोडे, मोडे, खुटे, चूटे वह पुरुष भवांतर में कुष्ट रागी होता है। जिस प्रकार गोविंदपुत्र गोसलीया मध आदि सचित करने के हेतु पाप करके पद्म सेठ का पुत्र गोरा नामक वणिक महा कुष्टी हुआ (४५) उस गोसल की कथा कहते हैं —

"पैठाणपुर नगर में गोविंद नामक गृहस्थ रहता था। उसकी गौरी नामा स्त्री थी, उसका गोसल नामक पुत्र महा दुर्व्यसनी था। अकेला वनमें जाकर लकडी से मध पुडे को गिराता। जहाँ ससलादिक जीव विशेष रहते, वहाँ दावानल भकडाता अग्नि जलाता, वेन, गौ, व घोडे को अङ्कित करता, कोमल नये पौदों व कुम्पलको छेदता, उन्मूलन कर डालता, ऐसे कृत्यों को करता हुआ देखकर लोगों ने उसके बापको ओलमा दिया, तब बाप ने उसे शिक्षा दी, परन्तु वह सब राख में डालने की तरह निष्फल गई। वह पुत्र मातपिता को भी खेद का कारण हुआ। धर्मकी तो बातभी वह नहीं जानता था। उस अर्से में उसके मातपिता देवशरण हुए। तब तो वह गोसल

निरङ्कुश हाथी की भाँति उच्छृंखल होकर फिरने लगा। एक दिन नगर के उपवनों में आकर नारिंगादिक के वृक्षोंको उन्मूलन कर दिये। उसको कोटवाल ने देखा। बाँध कर राजा के पास ले आया। राजाने उसका सर्वस्व लेकर छोड़ दिया। फिरभी एक दिन गुप्तरीत्या राजा के बागमें जाकर अनेक प्रकार की कोमल वनस्पति को काट डाली। उसको वनपालक ने देखा, तब खूब पीटकर उसको राजा के पास लेगया और वनपालक ने विज्ञप्ति की कि महाराज ! इसने तुम्हारी वाड़ी का विनाश किया है। राजाने उसके दोनों हाथ कटवा डाले, जिससे महा दुःखी हुआ। पुनः उसने बहुत ही पश्चात्ताप किया, कहा है —

माय बाप मोटा तणी शीख न माने जेह।
कर्मवश पड़िया पछी पछी परतावे तेह ॥१॥

फिर वह गोसल आत्मनिंदा करता हुआ मृत्यु पाकर उसी नगर में पद्मसेठ के यहाँ गोरा नामक पुत्र हुआ। वह जन्मसेही रोगी व गलत कुष्टी हुआ। उसके नख और नाक बैठे हुए, भ्रकुटी के केश सड़े हुए और दाँत गिरे हुए थे, निरन्तर मक्खियाँ गनगनाट करती हुई शरीर के ऊपर बैठी ही रहती थी। दुर्गन्ध तो इतनी निकलती थी

कि किसी से सहन नहीं हो सकती। पिताने अनेक औषध किये पर वह सर्व व्यर्थ गये। कष्ट नष्ट न हुआ और रोग की शान्ति न हुई।

एकदा दमसार नामक ज्ञानी मुनि उस नगर के वनमें पधारे। उनको वन्दना करने के लिए नगरवासी जनोंको जाते हुए देख कर पद्म सेठ भी उसके साथ गया। वहाँ साधु मुनिराजने धर्म देशना में कहा कि—जीव अपने किये हुए कर्म के वशीभूत होकर दुःखी होता है। यह श्रवण कर पद्मसेठ ने पूछा कि—हे भगवन्! मेरे पुत्रने कौनसे पाप किये हैं? गुरुने उसको पूर्वोक्त गोविंदका सर्व वृत्तान्त सुना कर कहा कि वह गोसल मर कर तेरा पुत्र हुआ है। पद्म सेठने घर आकर अपने पुत्र को कहा कि तूने पूर्व भव में बहुत पाप किये हैं। यह सुनतेही उसे जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। फिर मुनिराज के पास आये। उनको वन्दना करके व पाप की निंदा करके उसने अनशन किया। मृत्यु पाकर प्रथम देवलोक में देवता हुआ।"

अब एकत्तीसवीं पृच्छा का उत्तर एक गाथा के द्वारा कहते हैं.—

अब धनश्री ने पूर्वभव के स्नेहवशात् धनदत्त कुबड़ेके साथ विवाह करने की वांछा से मनोरथपूरक नामक किसी यक्षका आराधन किया। यक्षने संतुष्ट हो कर 'माँग, माँग, ऐसा तीन दफे कहा। धनश्री ने कहा कि जिस प्रकार मेरा पति धनदत्त होवे ऐसा आप उपाय कीजिये। तब यक्षने कहा कि तेरे पिता ने दोनों पुत्रियों का एकही दिन एकही लग्न में विवाह करने की इच्छा की है, उस समय मैं दृष्टि बन्धन करूंगा, तूने धनदत्त के साथ पाणिग्रहण करना, फिर जब वह तेरा पाणिग्रहण करके तुझे अपने घरको लेजायगा, तब मोह दूर होगा। ऐसा कहकर यक्ष अदृष्ट हो गया।

अब विवाह के दिन दोनों वर साथही व्याहने को आये। यक्षने सबको मोहित किया। दोनो विवाह करके अपने २ घरको आये। तब धनदत्त तो धनश्री को अत्यन्तही सुरूपा देखकर हर्षित हुआ और धनपाल अपनी परिग्रहिता स्त्रीको कुबड़ी देखकर उदास होकर मनमें विचार करने लगा कि यह कैसी इन्द्रजाल हो गई! मति विभ्रम कैसे होगया! यह बात राजा ने सुनी और गाँव लोगों ने भी जानी लोगों के समूह मिलकर बातें

करने लगे। फिर दोनों वर स्त्री के लिये परस्पर कलह करते हुए राजा के पास गये। राजाने उनको वापिस अपने २ घरको भेज दिये। और धनश्री को बुला कर एकान्त में पूछा कि, धनदत्त कूबडा है, वह तेरेको प्रिय न होगा, अत सचमुच कहकि तू किसके साथ व्याही है? यह श्रवण कर धनश्री ने राजाके पास यथातथ्य बात कहदी कि मैंने मोह के वश हो कर अवश्य इस धनावह के पुत्र के साथ शादी करने के लिये ही यक्षका आराधन किया था, वह सतुष्ट हुआ, उसके सान्निध्य से मैं धनदत्तके साथ व्याही हु और मेरी कूबडी बहिनको यक्षने धनपाल के साथ व्याही है। अब जैसा युक्त होवे वैसा करिए। देवतान जो किया वह अन्यथा किस तरह हो सकता है? अत मुझे यह कूबडाही भरतार रहने दीजिये। फिर राजाने कई सज्जनोंको बुला कर सर्व वृत्तांत कह सुनाया। वे भी सब समझ कर घरको चले गये।

एकदिन उस नगरके वनमें धर्मरुचि नामक आचार्य चार ज्ञानके धारक आ कर समोसरे। उनको वदना करने के लिये सब लोक गये, उसके साथ धनदत्त भी अपनी स्त्री सहित गया। मुनिको वदन कर धनदत्तन पूछा कि

हे भगवन् ! किस कर्मके योगसे मैं कूबडा हुआ। और किस कर्म के यागसे मेरी स्त्री धनश्रीका मेरे ऊपर बहुतही स्नेह है ? तथा किस शुभकर्म क यागसे मुझे बहुत लक्ष्मी—सुख—सौभाग्य मिला है ? सो मेरे पर कृपावंत हो कर कहिए।

गुरु बोले कि—हे धनदत्त ! तु पूर्वभव में धन्ना था और धनश्रीका जीव धीरू नामा तेरी स्त्री थी, तूने बैल व रासभादिकके उपर बहुत भार भरा था, जिससे तू कूबडा हुआ, और भावसे साधुको दान दिया जिसके योग से लक्ष्मीका योग अखंड रहा। गतभवमें तुम दोनों स्त्री भरतार थे, जिससे तुम्हारा स्नेह भी अखंड रहा है। ऐसी बात सुननेसे दोनों का जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। पूर्वभव देख। फिर सम्यक्त्व मूल बारह व्रत अङ्गीकार करके मुनिको वंदना करके घरका पहुचे। अनुक्रमसे धर्म पालते हुए सुपात्रको दान देते हुए आयुपूर्ण करके देवलोकमें देवता हुए। ”

अब बत्तीसवें प्रश्न का उत्तर एक गाथा के द्वारा कहते हैं।

जाइमओउमत्तमणोजोवेविकिणइजोकयग्घोय।
सो इन्दभूइ मरिउं दासत्तं वच्चए पुरिसो ॥१७॥

अर्थात्— जो जीव जातिमद करे, अहकार करे यानि जाति कुलादिक के मद से मदोन्मत्त-उन्मत्त होवे तथा जो मनुष्यादिक जीवों को बेचे और कृतघ्न होवे अर्थात् अन्यके किये हुए उपकारों को भूल जावे, परनिंदा करे, आत्म प्रशंसा करे, अन्य प्रशंसनीय व्यक्तिके गुणोंको प्रकट न करे किसी गुणवान की प्रशंसा न करे, अन्यके अविद्यमान दोष कहे, वह मनुष्य नीचगोत्रकर्म उपार्जन करता है। और हे इन्द्रभूति ! हे गौतम ! वह पुरुष मरकर दासत्वको प्राप्त होता है, जिस प्रकार हस्तिनापुर में सोमदत्त पुरोहित पदभ्रष्ट होकर मरकर डुम्बपुत्र हुआ (१७) उसकी कथा कहते हैं —

"कुरु देशके हस्तिनापुर नगर में सोमदत्त नामक पुरोहित रहता था। उसको अनेक मनोरथों के पश्चात् एक बलभद्र नामक पुत्र हुआ। वह ब्राह्मण जाति के मद से दूसरे लोगों को तृण समान गिनता था। नगर में चलते हुए रास्तेमें पानी छींटकर चलता। राजपुत्रका स्पर्श होता तो वो स्नान करता, प्रायश्चित्त कर लेता। इस प्रकार ब्राह्मणोंके

अतिरिक्त इतर जातियों के ऊपर द्वेष धारण करता और उनकी निन्दा करता हुआ केवल अपनी जातिकी ही प्रशंसा करता था। लोक उसकी बहुत हाँसी करते, परन्तु उसको जग भी लज्जा नहीं आती। इस प्रकार वर्त्तन करके वह पुत्र अपने मातपिता का भी अत्यन्त खेदका कारण भूत हुआ।

उसके पिता ने उसे कहा कि हे वत्स ! लोक व्यवहार ही अच्छा है, कर्म के वश ब्राह्मण भी हीन जाति का प्राप्त करता है, अत किसी जीवके लिये जाति शाश्वतहै नहीं। इस वास्ते मद नहीं करना और यदि करना तो केवल इतना ही कि जिससे लोक हाँसी न करे। इत्यादि शिक्षा उसका पिता देता था, परन्तु वह मानता नहीं। उन्मत्त हाथी की तरह खुमारी में जातिका अभिमान करता ही र हता। उसका पिता जब देवशरण हुआ तब राजा ने, पुरो हित का पुत्र अहंकारी था इस लिये, अयोग्य जानकर उस के पिता के पदपर स्थापित नहीं किया। दूसरे का पुरोहित पद प्रदान किया। इस भाँति मदके करने से यहाँहा पदभ्रष्ट हुआ और लोक में हाँसी हुई। लोगोंने उसका ब्रह्मदत्त ऐसा नाम रक्खा। पदवीके जानेसे निर्धनी होगया। कृतघ्नी हुआ। तब गौएं, बैल आदि बेचकर उदरपूर्ति करने

लगा। सब लोक उसकी निन्दा करने लगे। एकदिन गौओं-को घास डालता हुआ देख कर किसीने उस को कहा कि हे ब्रह्मदत्त। ये तृण, कि जिनको तू स्वहस्त से उठा रहा है उन सब तृणोंको मातंगी ने पैरों के नीचे कुचले हुए हैं, जिससे तेरे को दोष नहीं लगता है क्या? इस प्रकार अनेक रीति से लोक उसकी हाँसी करने लगे, जिससे वह क्रोधित होकर गाँव छोड़ कर चला गया। चलते हुए रास्ता भूल गया। वहाँ पर डुम्बी को देखकर आक्रोश करके हनने लगा, तब डुम्बने कोप करके ब्रह्मदत्त के पेटमें छुरा मारा, जिससे वह मृत्यु पाकर डुम्बा के वहाँ पुत्र रूपसे उत्पन्न हुआ। वहभी काना, कुरूप, काना और दुर्भागी हुआ। वह राजा लोगोंका दासत्व करता और मनुष्य को शूली पर चढ़ाकर वध करनेका कार्य करता। वहाँ से मृत्यु पाकर पाँचवी नर्क में नारकी हुआ। वहाँ से निकल कर मत्स्य हुआ। वहाँ से पुन नरक में गया। इस प्रकार अनेक भवभ्रमण करके जब मनुष्य गति में उत्पन्न होता तब भी नीच कुल में ही उत्पन्न होकर दासत्व करता। एक समय वह अज्ञान तपके बलसे ज्योतिषी देवमें उत्पन्न हुआ। वहाँ से चव कर पद्मखंड नगर में कुन्ददन्ता नामकी वेश्या के वहाँ पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ। उसका नाम मदन

पकला। वहाँ बहुत्तर कला सीखा। परोपकारी, दक्ष, दयालु, लज्जालु, गम्भीर, सरल, मितवादी और सत्यवादी हुआ। जैसे उत्तम गुण उसमें थे वैसे ही गर्व भी नहीं करता। जब लोक उसे गणिका का पुत्र कहकर बुलाते तब दुःखी होकर सोचता कि, मैंने पूर्वभव में पाप किये हैं, जिससे विधाता ने मेरे को गणिका के वहाँ जन्म दिया। जिस से मैं इतने गुणों का धारक होने पर भी जाति हीन हुआ हूं। अथवा अमृतमय जो चन्द्रमा है वह भी कलंकित है तथा रत्नाकर जो समुद्र है वह अनेक रत्नों से भरपूर होने पर भी उसका पानी खारा है, इसी प्रकार जहाँ गुण होते हैं वहा दोष भी होने ही हैं।

एकदा उस नगर में केवली भगवान् पधारे। उनको वन्दनाके लिये मदन गया। वन्दन कर उसने पूछा कि हे भगवन्! मेरे में कुछ उत्तम गुण होने पर भी मैं किस कर्म के उदय से हीन जाति में उत्पन्न हुआ हूं? भगवानने पीछले भवोंका स्वरूप कह सुनाया और कहा कि तूने जातिकुलका मद किया तथा परनिंदा की, जिसके पापसे गणिका के वहाँ उत्पन्न हुआ। तब मदन ने कहा कि हे भगवन्! यदि मेरे में योग्यता हो तो मुझे दीक्षा दीजि। येकेवल ज्ञानी ने उसे योग समझकर दीक्षा

प्रदान की । साधु समाचारी सीखाई । फिर दुष्कर तप-करके व अनशन करके देवता हुआ । अनुक्रम से कर्म क्षय करके मोक्ष सुख को प्राप्त किया । ”

अब ततीसवीं पृच्छा का उत्तर एक गाथा के द्वारा कहते हैं —

विणयविहोणोचरित्तवज्जिओदानगुणविकत्तोय।
मणसाय दंडजुत्तो पुरिसो दरिद्दिज्जो होय ॥४८॥

अर्थात्—जा पुरुष विनय करके हीन होता है तथा चारित्रवर्जित एव दान गुण से वियुक्त होता है यानि दान गुण रहित होता है तथा मनोदंड, वचनदंड और कायदंड इन तीन दंडों करके युक्त यानि मनसे आर्त्तध्यान रोद्रध्यान चिंतवे, एव वचन से दुर्वचन बोले, लोगों को कुबुद्धि देवे, और कुचेष्टा कर, ऐसा पुरुष मरकर दरिद्री होना है ॥ ४८ ॥

जैसे हस्तिनापुर में सुबधु सेठका मनोरथ नामक पुत्र अविनीत व अविरति दशामे मर कर दरिद्री हुआ । इसका निप्पुराय ऐसा नाम रक्खा गया था । जिसकी कथा कहते हैं ।

“ हस्तिनापुर नगर में अरिमर्दन नामक राजा राज्य

करता था। उस गाँव में सुरघु नामक सेठ रहता था। उसकी बन्धुमती नामक भार्या थी, उसे बहुत मनोरथ के पश्चात् एक पुत्र हुआ, अतएव उसका मनोरथ ऐसा नाम रक्खा। वह जब बड़ा हुआ तब उसका पिता उसे देवगुरु को नमस्कार करने का कहवे, परन्तु वह स्तब्ध हो खड़ा रहता, प्रणाम नहीं करता। उसको शालामें पठनार्थ भेजा, वहाँ भी एक हरफ नहीं सीखा। पिताने बड़ोंका विनय करने की शिक्षा दी सो भी किसी का विनय नहीं करता। अतः जिसका जो स्वभाव होता है वह किसी प्रकार मिटता नहीं।

एक दिन उसका पिता उसे गुरु के पास लेगया। गुरुको कहा कि इसको प्रतिबोध दीजिये। गुरुने मनोरथ को कहा कि हेवत्स ! व्रत पच्चक्खाण नियम करने से बहुत फल होता है। अब तेरी इच्छाके अनुसार कुछ नियम ले। मनोरथ ने कहा कि मेरे से नियम पलते नहीं। गुरुने कहा कि ऐसा है तो फिर तू दान देने का व्यसन रख, मनोरथ ने कहा, मैं दान भी नहीं कर सकता। तत्पश्चात् इसका पिता मर गया। मनोरथ बड़ा ही कृपण था जिससे उसके घरमें कोइ भिखारी भी याचना करने को नहीं आता।

एक दिन वह एकाकी ग्रामान्तर को जारहा था, उसे मार्ग में चोर लोगोंने मार डाला, पासमें जो कुछ धन था वह सब चार ले गये। मरकर दरिद्री के कुल में जा कर पुन रूप से उत्पन्न हुआ। वहाँ निष्पुण्यक ऐसा नाम रखा। बडा हुआ, तब लोगों के ढोरों को चारता, हल खेडना, लोगों की सेवा करता, दास होकर रहता, महनत मजदूरी करता और शरीर पर बोझ वहन करता तो भी पेट भरना दुर्लभ होता।

एकदफे धन कमाने के लिये देशान्तर को चला, वहाँ लक्ष्मी प्राप्त करने के अनेक उपाय किये, परन्तु कर्मयोग से दरिद्री ही रहा। अब वहाँ एक परमुख नामक देव था, उसके ऊपर लोगों का बहुत विश्वास था, उसके समक्ष धन प्राप्तिके लिये उपवास करके बैठा। सातवें दिन देव प्रत्यक्ष होकर बोला कि-तू उपवास किस वास्ते कर रहा है ? तब दरिद्री ने कहा कि लक्ष्मी के लिये करता हु। देवता ने कहा कि लक्ष्मी का मिलना तेरे भाग्य में नहीं है। दरिद्री बोला कि-तबतो मैं यहाँ ही मरना चाहता हु। ऐसी उसकी हठ जानकर देवता ने कहा-प्रभात में यहाँ सुवर्ण का मोर नृत्य करेगा, वह नित्यप्रति एक पिच्छ सुवर्ण का छोड देगा, वह तू ले लेना। ऐसा कह कर देव अदृश्य हुआ।

प्रात कालमें सुवर्ण का एक पीछ मिला, इस प्रकार नित्य प्रति एक पीछ लेते २ एकदा दरिद्री को कुबुद्धि उत्पन्न हुइ और विचार किया कि, इस जंगल में कहाँ तक रहें ? अत इस मोर को पकड कर एकही साथ उसके सर्व पीछ लेलूं । ऐसा सोच कर के मयूर को पकड लिया, कि शीघ्र ही मयूर का काग हो गया, और देवता ने आकर दरिद्री को लात का प्रहार किया, जिसस वह गिरगया । शुरू से मयूर के जितन पीछ लिये थे वे सर्व काग के पीछ हो गये । कहा है कि "बुद्धिः कर्मानुसारिणी—

उतावल कीजे नही कीधे काम विणास ।
मोर सोनानो कागडो करी हुओ घरदास ॥१॥

फिर वह खुदही खुदकी निंदा करता हुआ झंपापात करने के लिये पर्वतके ऊपर चढा, वहाँ एक साधुको देखा, तब मनमें विचार करने लगा कि मैं इनको धन प्राप्ति का उपाय पूछु । ऐसा चिंतन करके उनको वंदना की, तब ऋषिने कहा कि तूने देवका आराधन किया, वहाँ मोरका काग हुआ । जिसे अब तू यहाँ झंपापात करने को आया है । यह श्रवण कर आश्चर्य पा कर विचार किया

कि देखा इस ऋषि का कैसा ज्ञान है! फिर साधुजी कहने लगा कि महाराज! मुझे धन प्राप्तिका उपाय बतलाइये। ज्ञानी ने कहा कि तूने पूर्वभव में किसी नियम का पालन नहीं किया है, विनय नहीं किया है और किसी का दान भी नहीं दिया है, जिस के योग से तू दरिद्रि हुआ है। ऐसी बात सुनते हुए जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ जिससे पूर्व के भव देखे। तब वैराग्य पा कर दीक्षा ली। फिर अच्छी तरह संयमाराधन करके देवलोक में देवता हुआ ''

अब चालीसवी पृच्छा का उत्तर एक गाथा से [illegible] कहते हैं—

जो पुण दाइविणयजूओ चारित्तगुण[illegible]
सोजणसयविरकाओमहढ्ढिओहोइलोग[illegible]

भावार्थ—जो पुरुष चाइ यानि [illegible] दातार होता है, विनय युक्त होता है और [illegible] युक्त होता है, वह पुरुष सैंकड़ों [illegible] विख्यात होता है अर्थात् महर्द्धिकों में [illegible] होता है, जिस प्रकार साकेतपुर पट्टनमें [illegible]

धनमित्र सेठका पुण्यसार नामक पुत्र हुआ। इसने पूर्वकृत पुण्यके योग से घरमें चार निधान देखे, सो राजाने ले लिये और फिर उसे वापिस दे दिये। उसकी कथा कहते हैं —

"साकेतपुर में भानुमित्र राजा राज्य करता था। वहाँ धनमित्र नामक सेठ रहता था। उसे धनमित्रा नामा भार्या थी। दोनों सुखमय जीवन निर्गमन करते थे। एकदा धनमित्रा स्त्री ने रात्रि के समय सोते हुए स्वप्नमें रत्नों से भरा हुआ सुवर्णका पूर्ण कलश मुख में प्रविष्ट होता हुआ देखा। फिर जागृत होकर पति के समक्ष बात कही, भरतार ने विचार कर कहा कि तुझे कोइ महाभाग्यशाली पुत्र होगा। यह सुनकर स्त्री अत्यन्त हर्षवन्त हुई। अनुक्रम से पूर्ण मास होनेपर पुत्रका प्रसव हुआ। बधाइ देनेवालों को पारितोषिक दिया। पुत्रका पुण्यसार नाम रक्खा। वय के साथ ही साथ रूप और गुणकी भी वृद्धि होने लगी। सर्व कलाओं को सीखा, यौवनवय में एक व्यवहारिकी धन्या नामक कन्या के साथ विवाह किया।

एकदा पुण्यसार रात्रि के समय सुख निद्रा में सोया

हुआ था, उस समय लक्ष्मीदेवी ने आकर कहा कि हे पुण्यसार ! मैं तेरे घरको आउगी। फिर स्वप्न में घरके चारों कोने में रत्नोंसे भरे हुए सुवर्ण के कलश रूप चार निधान देखे। तब पुण्यसार को मालूम हुआ कि-देवीने जो कहा था वह सत्य हुआ, परन्तु यदि किसी दुर्जन के वचन से राजाको यह हाल विदित हो जायगा तो अनर्थ होगा, अतएव पहले से मैं खुदही राजा को यह हाल निवेदन करू। ऐसा सोचकर के राजा के पास निधान का स्वरूप कहा। यह देखने के लिए राजा खुद पुण्यसार के वहाँ आया। भंडार देखकर विस्मित हुआ। वहाँ से उठवा कर अपने भण्डार में सर्व द्रव्य भेज दिया। फिर दूसरे दिन भी प्रभात के समय पुण्यसार ने चार भण्डार देखे, और राजा के पास जाकर बात कही। वह भी राजाने पुण्यसार के वहाँ से मंगवा कर अपने भण्डार में स्थापित किये। पुन तीसरे दिनको भी उसी अनुसार चार भण्डार देखे और राजा के समीप जा कर जाहिर किया कि महाराज ! मेरे यहाँ उसी प्रकार औरभी चार भंडार आये हुए हैं तब राजा ने उनको भी अपने भण्डार में रखवाने का हुकम किया। तब प्रधान बोला कि महाराज ! आगे आपने जो दो निधान

मगवा कर भंडार में रखवाये है सो यहाँ पर मंगवाइये। राजाने भंडार खुलवा कर देखा तो उस में निधान नहीं थे, तब राजाने कहा कि ये तो जिसके पुण्ययोगमे निधान आये थ उसीके वहाँ रहेंगे, मेरे पास रहने वाले नहीं। मैं लोभाधीन हो कर यहाँ लाया, मगर मेरा वह प्रयास व्यर्थ हुआ।

फिर राजाने उस भंडारगत सर्वद्रव्य पुण्यसारको दे कर नगरशेठका पद प्रदान किया। वस्त्र, मुद्रिका आदि पहनाये, और बड़े बाजे गाजेके साथ सपरिवार पुण्यसारको घर पहुंचाया। फिर पुण्यसारका महत्व दिनप्रतिदिन वृद्धिगत हुआ। अपनी लक्ष्मीसे पुण्यकार्य साधता रहता था, परन्तु गाँठमें नहीं बाँधता था।

एकदा उस नगरके उद्यानमें सुनन्द नामक केवली भगवान् समोसरे। उनको राजा सपरिवार तथा पुण्यसार सेठ भी अपने माता, पिता स्त्री और अन्य मनुष्योंके साथ वंदन करनेको गये। वंदना नमस्कार कर बैठे। केवलीने धर्मोपदेश दिया। फिर धर्ममित्र सेठने पूछा कि हे भगवन् ! मेरे पुत्रने पूर्व भवमें कैसे पुण्य किये हैं कि-जिनके प्रभावसे यह लक्ष्मी, राज्यमान, सौभाग्य

व महत्त्वको प्राप्त हुआ ? तब गुरुने कहा कि-पूर्व कालमें इसी नगरमें धनकुमर सेठ था, उसने गुरुके समीप जा कर बाइस अभक्ष्य और बत्तीस अनंतकायके नियम लिये, सुपात्रोंको दान दिया, देव, गुरु, और बडिलोंकी भक्ति एव विनय किये, श्रावक धर्म पालन किया, वृद्धावस्था में दीक्षा ली, सिद्धान्तों का पठन किया, तपश्चर्या की क्षमा उपशमादिक अनेक गुणोंको धारण किये और माँते अनशन ले कर आयुष्य पूर्ण करके तीसरे देवलोकमें इन्द्र सामानिक देवता हुआ। वहाँ देव सम्बन्धी भोग भोग कर वहाँसे चव कर पुण्यके प्रभाव से तेरा पुत्र हुआ है पूर्व पुण्यके योगसे यह लक्ष्मी महत्त्वादिकको पाया है। यह बात सुनकर पुण्यसारको जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। पूर्वके भव देखे। फिर कुटुंब सहित श्रावक धर्म अंगीकार करके अपने घरको आया। नित्य देवपूजा करता, नवकारका जाप करता, गुरुवंदन करता और दान देता। फिर एकदा अपने पुत्रको योग्य जान कर उसको घरका भार सुपुर्द किया और अपने सेठ पद पर स्थापित किया। पश्चात् पुण्यसारने सुनंद नामक गुरुके पास दीक्षा ली। निरतिचारपणे चारित्रधर्मका

पालन कर देवता हुआ। वहांसे चव कर पुनः मनुष्य जन्म पा कर मोक्ष सुख सपादन करेगा।

जिण पूजे वंदे गुरु भावे दान दियत।
पुण्यसार जिम तेहने ऋद्धि अचिंति हुत ॥१॥

अब पेंतीसवीं व छत्तीसवीं पृच्छाका उत्तर दो गाथाओंके द्वारा कहते हैं।

वीसत्थघायकारो सम्ममणालोइऊण पच्छित्तो।
जो मरइ अन्नजम्मे सो रोगी जायए पुरिसो॥५०॥

वीसत्थरक्खणपरो आलोइयसव्वपावठाणो य।
जोमरइअन्नजम्मेसो रोग विवज्जिओ होइ॥५१॥

अर्थात — जो मनुष्य विश्वासघात करता है और सम्यक मनसे अर्थात शुद्ध मनसे शुद्ध आलोयणा नहीं लेता वह पुरुष मर कर अन्य जन्ममें यानि भवान्तरमें रोगी होता है (५०) तथा जो पुरुष विश्वासीकी रक्षा करनेमें अग्र होता है और अपने किये हुए पापस्थानकोंको शुद्ध मनसे आलोचता है, वह भवान्तरमें रोग विवर्जित होता

है -निरोगी होता है (५१) इन दानों के ऊपर अट्टणमल्ल की कथा कहते हैं।

" उज्जयनी नगरी में जितशत्रु राजा राज्य करता था। उसके पास अट्टणमल्ल नामक महामल्ल था। इधर सोपारा नगरमें सिंहगिरि नामक राजा था, वह प्रतिवर्ष मल्लयुद्ध करवाता, मल्लयुद्ध में जो कोइ जीतता उसको बहुत धन देता था। अट्टणमल्ल दूसरे मल्लों को जीतकर वहाँसे शिरपावमें बहुत धन ले आता था। एकदा सिंहगिरि राजाने सोचा कि उज्जयनीका मल्ल आकर प्रतिवर्ष जीत जाता है यह अच्छा नहीं है, अत उसका कुछ उपाय करें। फिर एक बलवान् माछीको देखकर राजा ने उसको अपने पास रख कर मल्लयुद्ध सीखाया। मलीदा खिला पिला कर पुष्ट किया। फिर मल्लमहोत्सव के दिन अट्टण मल्ल ने आकर युद्ध किया उसको तरुण माछी ने पराजित किया। राजाने माछिको द्रव्य दिया। अट्टण वापिस लौटा। उसने सोरठ देश में एक महाबलवान् फलिह नामक कोली को देखा, उसको कुछ धन देना निश्चित करके उज्जयनी में लेगया। वहाँ उसे मल्लविद्या सीखाइ। पुनः सोपारा नगर में परीक्षा के समय ले आया, वहाँ सभा में मल्लमहोत्सव सम्बन्धी वाजित्र बाजते, शङ्ख पूरते,

यदिजन जय जय बोलते, फलिहमल्ल और माच्छीमल्ल ये दोनों परस्पर झूझन, नाचते, हसते, एक दूसरे को मुष्टि प्रहार देते और गिरते हुए अपने२ स्थानक प्रति गये। वहां अट्टणमल्लने फलिहमल्लको पूछा कि तेरे को युद्ध करते हुए कहिं अङ्ग में पीडा हुई हो सो कह। उसने यथार्थ कह दिया, कि अमुक २ अंग में दर्द होता है। तब अट्टणमल्ल ने फलिहमल्लको अभ्यंगस्नान कराके इसका शरीर ताजा कर दिया।

अब राजाने माच्छीमल्लको पूछा कि तेरे अंगमे कहाँ दर्द होता है? मगर मारे शरमके माछीने यथार्थ बात न कहते हुए अंगमें दर्द होनेकी बात को छुपाया। फिर दूसरे दिन सभामें सब लोगोंके समक्ष दोनों मल्लयुद्ध करने लगे। वहाँ माच्छीमल्ल थक गया, और फलिहमल्लने उसकी ग्रीवा मरोड कर मार डाला। जिससे फलिहमल्लका यश विस्तृत हुआ, और पारितोषिक भी मिला। इस प्रकार अट्टणमल्ल के आगे वह यथास्थित स्वरूप कह कर सुखी हुआ, और माच्छीमल्ल ने यथास्थित स्वरूप न कहा, जिस से दुःखी हुआ। इस दृष्टांत का श्रवण कर जो कोइ गुरु के पास सत्य कहकर आलोयणा लेता है, वह अट्टण मल्ल फलिहमल्लकी तरह सुखी नीरोगी होता है और जो

कोइ गुरुके पास आलोयण लेते हुए सत्य बात नहीं कहता वह माञ्जीमल्लकी तरह रोगी हो कर दुःखी होता है। कहा है —

पाप आलोवे आपणु गुरु आगल निःशक।
नीरोगी सुखीया हुवे निर्मल जेहवो शंख ॥१॥

अब सैंतीसवीं पृच्छाका उत्तर एक गाथा के द्वारा कहते हैं—

लहु हत्थयाइ धुत्तो कूडतुलाकूडमाणभंडेहिं।
ववहरइनियडिबहुलोसोहीणंगोभवेपुरिसो ॥५२

अर्थात्—जो धूर्त, हस्तादि लाघवसे झूठे तोल व झूठे माप से तथा कुंकुम कपूर मजीठ मेलसेल करके कूडे करियाणेका व्यवसाय यानि व्यापार करता है एवं निकृतिबहुल अर्थात् मायावी हो कर बहुल पाप करता है वह पुरुष भवान्तरमें यदि मनुष्य होता है तो भी हीन अङ्गवाला होता है। जिस प्रकार ईश्वर सेठका पुत्र दत्त नामक था, वह पूर्वभवमें कूडे तोल, कूडे माप और कूडे करियाणेका व्यापार करनेसे पापके परिणामसे हस्तादिक अंगसे हीन हुआ। उसकी कथा इस प्रकार है —

"क्षितिप्रतिष्ठित नामक नगर में आदिदेव ईश्वर नामक सेठ रहता था। उसकी मेमला नामक स्त्री थी। उसको चार पुत्र हुए, उन चारों को पढ़ाये, उनकी शादी की। सेठ खुद वृद्ध हुआ, उसके घरमें विपुल द्रव्य होने पर भी लाभ के वश अनेक व्यापार करता, परन्तु लक्ष्मी किसी को देता नहीं, किसीको दान देनेका तो स्वप्नमें भी उसका विचार नहीं आता था।

एक दिन सेठ जिम कर गवाक्ष में बैठा था, उस समय चौथे पुत्र की स्त्री, जो कि अत्यन्त गुणवती थी और जो सुपात्र में दान देनेकी इच्छा रखती थी, वह स्त्री बर्तन धानके लिये घरके बाहर चोकमें बैठी हुई थी, उस अर्सेमें आठ वर्ष की उम्रका कोइ नवदीक्षित साधु ईर्यासमिति शोधत हुए गौचरी के लिये सेठके वहाँ आया। उन्हें देख कर स्त्री ने कहा—

> चेला खरी सवार धर्मिणा वार न जाणीए।
> तुम ना अनर्थी आहार अम्ह घर बासी जीमीए॥

चेलाने कहा कि मैं अन्यत्र भिक्षा के लिये जाउ ? बहू ने कहा जिस प्रकार उचित समझें वैसा करें। फिर

साधु भी उस कृपणका घर छोड़ कर अन्य घरमें आ हार लेने के लिये गया ।

गवाक्षमें बैठे हुए सेठजीने यह सब बात सुन कर विचार किया कि-इन दोनोंके वचन मिलते हुए नहीं है । उस समय बहू को बुला कर पूछा कि-दो पहर हुए तिस पर भी तुमने चेलाको ऐसा क्यों कहा कि प्रातःकाल है ? फिर चेलाने कहा कि हम डरते हैं । तब तुमने कहा कि हमारे घरमें सब बासी अन्न जिमते हैं, अपने घरमें तो सर्वदा नयी ही रसवती बनाइ जाती है, और सर्व कुटुंब ताजी रसवती खाते हैं, परन्तु ठंडी रसोइ तो कोइ खाताही नहीं है । तिस पर भी तुमने चेलाको ऐसा कहा इसका कारण क्या ? यह श्रवण कर बहू घूंघट करके लज्जावती हो कर कहने लगी कि हे तातजी ! सुनो, मैने चेलाका कहा कि-तुमने सवारमें यानि बहुत शीघ्र छोटीवय मे दीक्षा क्यों ली ? तब चेलाने कहा कि 'धर्मिणि वार न जाणीए,' सो मैं डरता हु, क्योंकि संसार असार है, आयु अस्थिर है, उसका भय लगता है, अतएव समय क्यों गुमाने ? क्योंकि जीवितव्य बीजलीके झबकारके सदृश है । फिर मैंने कहा

कि—हमारे घरमें बासी जिमते हैं, जिसका तात्पर्य यह है कि हमने गत भव में दान पुण्य किये हैं जिसके योगसे ऋद्धि मिली है, परन्तु इस भवमें दान पुण्य कुछ करते नहीं है जिससे नया कुछ उपार्जन नहीं होता है, इस लिये बासी भोजन करते हैं।

यह वचन श्रवण कर बहूको महा बुद्धिवाली जान कर सेठ हर्षित हुआ और कहने लगा कि मेरी यह बधू सर्व पुत्रबधुओंमें छोटी है, परन्तु बुद्धि की अपेक्षासे सर्वमें अग्रसर है, अत उसको मैं मेरे कुटुम्ब में बड़ी करके स्थापता हूं। अतएव आयंदा मेरे सर्व कुटुम्बी जनोंको चाहिये कि उसका पूछ करके कामकाज करे, ऐसी मैं आज्ञा करता हूं। इस के अतिरिक्त सेठको उसी दिन से दान देनेकी बुद्धि भी हुई।

कुछ समय व्यतीत होने के पश्चात् सेठको पाँचवा पुत्र हुआ। उसका दत्त ऐसा नाम रक्खा, परन्तु उसके हाथ पैर नहीं थे, हीनांग था। उसका जब यौवन वय प्राप्त हुआ तब लोक उसकी हाँसी करने लगे। वैद्योंने तैल मर्दनादि अनेक उपचार किये, परन्तु जिस प्रकार दुर्जन पर किया हुआ उपकार व्यर्थ जाता है उसी प्रकार

सेठने अनेक उपचार किये, बहुत द्रव्य खर्च किया, परन्तु पुत्र को कुछ भी आराम नहीं हुआ।

एकदा दो मुनीश्वर भिक्षा के लिये आये, उनको वंदना कर सेठने पूछा कि-महाराज! मेरा पुत्र अच्छा होवे ऐसा कोइ औषध बतलाइये। गुरुने कहा-जीवको रोग दो प्रकारके होते हैं, एक द्रव्यरोग व दूसरा भाव रोग। उनमें पहले द्रव्यरोग का प्रतीकार तो वैद्य जानता है, और दूसरे भावरोग का प्रतीकार हमारे गुरु जानते हैं। वे इस समय इसी गाँव के बाहर वनमें पधारे हुए हैं, उनको पूछो। यह बात सुन कर सेठ भी वनमें गया। वहाँ गुरुको वंदना कर पूछने लगे कि-महाराज! मेरा यह पुत्र अंगहीन है, वह किसी प्रकार अच्छा नहीं होता है, उसका कारण क्या? तथा द्रव्यरोग व भावरोग किसे कहते हैं। तब गुरु बोले कि राग द्वेष करके अशुभ कर्म उपार्जन करे उसे भावरोग कहते हैं, और उन कर्मोंका उदय होता है तब जो फल विपाक भोगना पड़ता है उसे द्रव्यरोग कहते हैं। भावरोग के नष्ट होने से द्रव्य रोग भी नष्ट होता है। तप, संयम, दया कायोत्सर्गादिक क्रिया के करने से भावरोग मिटता है, भावरोगके जानेसे द्रव्यरोग भी जाता है।

तेरे इस पुत्रने पूर्वभवमें व्यापार करते हुए लोगोंको वचित किये थे कूडे तोल व कूडे माप रख कर लोगोंको धोखा दिया था, सरस नीरस वस्तुओंका मेल सम्मेल करके बेचा था। इस प्रकार अगणित पाप किये थे, परन्तु एक दफा साधुको दान दिया था, उस पुण्य के योगसे तेरे यहाँ पुत्ररूप से उत्पन्न हुआ है। उसने जान बूझ कर कूड कपट छल भेद करके मुग्ध लोगोंका वचित किया था, जिसके योग से हाथ रहित हुआ है। ऐसी बात गुरु मुखसे श्रवण कर सेठ और दत्त-दोनोंने मिल कर श्रावकधर्म अगीकार किया। दत्तने नियम ले कर कपटका छोड दिया। नवकार मंत्रका स्मरण किया। मृत्यु पा कर देवलोक में गया, अतएव हे भव्यो! किसीको भी मत ठगो।

अब अडतीसवीं और गुनचालीसवीं पृच्छाका उत्तर एक गाथाके द्वारा कहते हैं—

सजमजुत्ताणगुणवतयाणसाहूणसोलकलिआण ।
मूओअवण्णवाए ण टुटओ पदणिहवाएण॥५३॥

अर्थात्—जो जीव, सयमयुक्त क्षमादि गुणवन्त, शीलयुक्त ऐसे साधु महात्माका अवर्णवाद बोलता है

निन्दा करता है वह जीव भवाँतरमें मूक यानि अवाक् होता है तथा जो जीव अपने पाऊ से साधुओं का लात मारता है वह जीव भवाँतर में लंगडा होता है (५३) जिस प्रकार विटपवासी देवशर्मा के पुत्र अग्निशर्मा ने महात्मा की निन्दा की, जिससे वह मूक हुआ और साधु को धप्पे व लातोंके प्रहार किये जिससे उसी भवमें उसको देवताने शिक्षा दी। वहाँ से मर कर नरक में गया। भवान्तरमें हीनकुलमें पासड नामक ठूंठा हुआ। उसकी कथा इस प्रकार है।

"बडोदे नगरमें देवशर्मा नामक ब्राह्मण, जोकि चौदह विद्या का निधान था, रहता था। उसको अग्निशर्मा नामक पुत्र हुआ, वह अनेक शास्त्रोंमें पारगत हुआ। ज्योतिष शास्त्रमें भी निपुण हुआ, जिससे अपने मनमें बहुत गर्व करने लगा। धर्मवन्त, गुणवन्त और चारित्र्यवंत की निन्दा करता, उनके दोष बोलता। उसके पिताने शिक्षा दी कि हे वत्स! 'जातिकुलका मद मत कर। समझदार मनुष्य गर्व नहीं करता है और किसी की निन्दा नहीं करता है। इत्यादि बहुत कुछ समझाया परन्तु जिस प्रकार दूधसे धोने पर काग उज्ज्वल नहीं होवे उसी प्रकार उसने अपने स्वभावको नहीं छोडा।

एकदा अनेक-साधुके परिवारसे परिवेष्ठित ज्ञानी गुरु वहाँ पधारे। उनको वंदना करने के लिए नगरवासी लोग गये। उन गुरुका महात्म्य देखकर सुनकर अग्निशर्मा कुपित हुआ और लोगों को कहने लगा कि इस पाखंडी महात्माकी पूजा भक्ति करने से क्या लाभ? यह वेदत्रयी से बाहर है।

एकदा यह ब्राह्मण अनेक ब्राह्मण लोगोंके देखते हुए गुरु के साथ वाद करने के लिए आया और कहने लगा कि–तुम शूद्र, अपवित्र और निर्गुण हो, फिर भी लोगों के पास पूजा करवाते हो, इसका कारण क्या? वेदके ज्ञाता ऐसे पवित्र ब्राह्मणों को दान दे, उनकी पूजा करे वही जीव स्वर्गमें जाता है। हम लोग यज्ञ करके छाग जैसे जानवरोंको भी स्वर्गमें भेज सकते हैं। इस प्रकार बोलने लगा। उसको एक शिष्यने कहा कि–तू पहले मेरे साथ ही विवाद कर। मैं ही तेरे प्रश्नों का उत्तर देता हु, सुन ले।

प्रथम तू यह कहता है कि तुम शूद्र हो हम ही ब्राह्मण हैं, यह तेरा कथन अयुक्त है, कहा है कि –

ब्राह्मणो ब्रह्मचर्येण यथा शिल्पेन शिल्पिकः ।
अन्यथा नाममात्रं स्यादिन्द्रगोपस्तु कीटवत् ॥ १ ॥

अर्थात् — ब्रह्मचर्य पाले उसे ब्राह्मण कहना चाहिये। जिस तरह कि शिल्पी के गुणोंसे शिल्पक कहलाता है। यदि ब्रह्मचर्य न हो तो इन्द्रगोप कीटके समान नामका ही ब्राह्मण समझना चाहिये।

फिर तू कहता है कि तुम अशौच हो, यह भी असत्य कहता है। पानी ढोल कर स्नान करके अपकाय जीवों की विराधना करनेसे कुछ शौचत्व नहीं होता है। यदि स्नान करने से शौचत्व होता हो तो पानी में रहनेवाले मच्छ कच्छ सर्व सदैव स्नान ही करते हैं। वे सब तेरे कथनानुसार पवित्र होने चाहिये; परन्तु मन शुद्धिके बिना शौचत्व नहीं होता है, मन शुद्धिको ही शौच कहा है। पुराणमें कहा है —

चित्तमंतर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानैर्न शुद्ध्यति ।
शतशोऽथ जलैर्धौतं सुराभांडमिवाशुचि ॥ १ ॥

किंच —

सत्यं शौचं तपः शौचं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
सर्वभूतदयाशौचं जलशौचं च पञ्चमम् ॥ २ ॥

चित्तं रागादिभिः क्लिष्टमलीकवचनैर्मुखं ।
जीवहिंसादिभिः कायो गङ्गा तस्य पराङ्मुखी ॥ ३ ॥

अर्थात्—जिसका अन्तःकरण दुष्ट है, वह पुरुष स्नानसे शुद्ध नहीं होता। प्रथम सत्यरूप शौच, दूसरा तपरूप शौच, तीसरा इन्द्रियनिग्रहरूप शौच, चौथा सर्व भूतपर दयारूप शौच और जल शौच तो अन्तिम पाँचवाँ शौच है। तथा जिसका चित्त रागादिकसे क्लिष्ट है, असत्य वचन बोलने से जिसका मुख अपवित्र है, ऐसे पुरुषको गंगा भी पवित्र नहीं कर सकती। अर्थात् तथा जीव हिंसादिकसे काया जिसकी अपवित्र है गंगा भी उनसे पराङ्मुख रहती है। पुनः कहा है कि

आत्मा नदी संयमतोयपूर्णा सत्यावहा शीलदयातटोर्मी।
तत्राभिषेकं कुरु पाँडुपुत्र ! न वारिणा शुद्ध्यति चान्तरात्मा ॥

अर्थात्—श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे पाँडुराजाके पुत्र अर्जुन ! संयम और पुण्यरूप जलयुक्त और सत्यरूप जिसका प्रवाह है, तथा शील और दयारूप जिसके तट हैं ऐसी आत्मा रूप नदी है, उसके भीतर तू अभिषेक कर। अर्थात् उसमें स्नान कर, परन्तु जलके द्वारा अन्तरात्मा कदापि शुद्ध नहीं हो सकता।

पुन तूने कहा कि- तुम निर्गुण हो, यह भी तेरा कथन अयुक्त है। क्योंकि क्षमा, दया और क्रिया प्रमुख अनेक गुण भी हमारे में प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होते हैं, तो फिर हम निर्गुणी कैसे ? कहा है –

चित्त शमादिभि शुद्ध वदनं सत्यभाषणै ।
ब्रह्मचर्यादिभि काया शुद्धा गगाँमसा विना ॥१॥

भावार्थ—क्षमादिकके द्वारा चित्त शुद्ध होता है, ब्रह्मचर्यादिकके द्वारा काया शुद्ध होती है। इस प्रकार गंगाके जल विना ही पूर्वोक्त सर्व शुद्ध होता है, परन्तु उनमें से कोई भी पदार्थ गंगाजल के द्वारा शुद्ध नही हो सकते।

पुन तू कहता है-तुम लोगोंके पास पूजा कराते हो, यह तेरा कथन भी असत्य है, क्योंकि कहा है कि-

पूजाँ ह्यते जना स्वस्य कारयंति न जातुचित् ।
स्वयमेव जन किंतु गुणरक्त करोति तत् ॥

भावार्थ—जो लोग हमारी पूजा करते हैं वे स्वयमेव-अपनी इच्छा से ही गुण देख करके करते हैं, क्योंकि

जन है वह गुणरत्न युक्त है अर्थात् मनुष्य मात्र गुणोंकी पूजा करते हैं इसमें कोइ आश्चर्यकी बात नहीं है।

और तूने जो यह कहा कि ब्राह्मण की पूजा करने वाला स्वर्गमें जाता है, यह भी असत्य है, क्योंकि ब्राह्मण जो अपवित्र, अभक्ष्यका सेवन करनेवाला, खेती करनेवाला, घरमें गौ, महिषी आदि पशुओंको रख कर उनका पालन करनेवाला तथा जो निर्दयी होता है उसकी पूजा करनेसे स्वर्गकी प्राप्ति नहीं होती है।

पुन तूने कहा कि—हम यज्ञमें छागका वध करके उसे स्वर्गमें भेज सकते हैं ऐसे हम पुण्यात्मा हैं, वह भी तेरा कथन असत्य है, क्योंकि तेरेही शास्त्रमें कहा है कि—

यूप छित्वा पशून् हत्वा कृत्वा रुधिरकर्दमम् ।
यद्येवं गम्यते स्वर्गे नरके केन गम्यते ॥ १ ॥

अर्थात्—यूपको छेद कर, पशुओंको मार कर, भय-कर हिंसासे रुधिरका कर्दम करके मनुष्य यदि स्वर्गमें जावे तो फिर नरकमें कौन जायगा।"

इस प्रकार युक्ति प्रयुक्ति के द्वारा सर्व नगरवासी

लोगोंके देखते हुए शिष्यने अग्निशर्मा ब्राह्मणको पराजित किया। जिससे ब्राह्मण क्रोधायमान हो कर अपने घरको चला गया। फिर रात्रिको अकेला वनमें जा कर सर्व साधु निद्रामे थे तब लातोंके प्रहार किये, मुष्टियों के प्रहार किये, उसे वनदेवताने पीटा व पकड लिया। फिर उसके दोनों पैरों को काट डाले। जिसकी व्याधि से पीडित हो कर चिल्लाता हुआ लोगोंने प्रात कालको देखा, उसका स्वरूप सर्व लोकों को विदित हुआ। तब सर्व उसकी निंदा करने लगे। इस प्रकार साधुओंकी अवज्ञा करके, वह पापिष्ट मर कर पहली नरकमे जा कर नारकी पणे उत्पन्न हुआ। वहांसे निकल कर किसी दरिद्रीके यहाँ पासड नामक पुत्र हुआ। वहाँ पूर्वकृत कर्मके दोषसे वह मूक हुआ, टूठा हुआ, जन्मतेही माता मर गइ, और जब वह आठ वर्षका हुआ तब उसका पिता देवशरण हुआ, दासत्व करके लोगोंका उदरपोषण करने लगा। सर्व लोगोंको अप्रिय हो कर फिर भी संसारमे बहुतही परिभ्रमण करेगा।

अब चालीसवीं पृच्छाका उत्तर एक गाथाके द्वारा कहते हैं—

जो वाहइ निस्ससोछाउव्वायपिट्ठिखिवयंजोध्य ।
सीयतगत्त संधि गोयम सो पंगुलो होइ ॥५४॥

अर्थात् — जो पुरुष नि शकतया किंवा नि स्पृश यानि निर्दय होकर वृषभादिक जीवो के ऊपर अधिक भार भर कर उनसे काम ले, जिससे छात यानि अग जिनके टूट गये हैं, उद्वात अर्थात् जिनका श्वास उचाही रहता है और शरीरकी सधि जिनकी दु खित है ऐसे दु खी वृषभ कर्मकरादिक जीवो को जो दु खी करे, वह जीव हे गौतम ! मर कर पगु होता है। जिस प्रकार सुग्रामवासी हल्लुकर्मणीका पुत्र कर्मण नामक था, उसने पूर्वभवमे बैल और हालीको भूखे व प्यासे रक्खे, जिससे वह पंगु हुआ। जिसकी कथा यह है —

"सुग्राम नामक ग्राममे एक हल्लु नामक कृषक रहता था। वह दयावत और सतोषी था। चारा पानीका समय होता तब हल चलाने वाले हल्लुको व बैलोंको छोड कर चारा पानी देता, कदाच चारा पानी हाजर न होता तो खुद भी जिमता नहीं, ऐसा नियम किया हुआ था। उसकी हेमी नामक स्त्री थी, वह सरल चित्तवाली थी, उसे क्रमश

नामक पुत्र हुआ, वह पूर्वकृत कर्मके उदय से रोगी व पंगु हुआ। वह जब बड़ा हुआ, तब खेतों की चिन्ता करने के लिए बैल पर बैठ कर खेतों में जाने लगा। वह बड़ा ही लोभी था जिससे अपन पिता की अपेक्षा तीन गुणी भूमिकी खेती कराता, हल्लु और बैलोंको समय हो जाने पर भी छुट्टी नहीं देता चारा पानी की चिंता भी करता नहीं। जिसके कारण प्रथम वर्ष में जो धान्य उत्पन्न होता था इससे आगे के वर्षो में कमती कमती उत्पन्न होने लगा जिससे क्रमश वह निर्धन हो गया। तो भी वह पाप कर्म करने से हटा नहीं।

एकदा ज्ञानी गुरु पधारे, उनको वदना करनेके लिए नगरवासी जनों के साथ ये पिता पुत्र भी गये। पिताने गुरुको पूछा कि हे महाराज! किस कम के योग से यह मेरा पुत्र रोगी, पङ्गु व निर्धन हुआ है? तब गुरु ने कहा कि उसने पूर्वभवमे खेती करते हुए भूखे व प्यासे बैलों से काम लिया है। उनको संधिमें प्रहार किये हैं, मारे हैं, अन्तमें पश्चात्ताप करने से वह मनुष्यत्व पा कर तेरा पुत्र हुआ है। ऐसी गुरुकी बानी को श्रवण कर हल सेवके पापो की आलोचना करके पिता ने दीक्षा ली और

क्षमणने श्रावकधर्म अङ्गीकार किया, आयु पूर्ण करके दोना ने देवलोकके सुख प्राप्त किये"।

अब एकतालीसवीं व वेयालीसवीं पृच्छाका उत्तर दो गाथा के द्वारा कहते हैं।

सरलसहावोधम्मिकमाणसो जीवरक्खणपरो य।
देवगुरुसघभत्तो गोयम स सुरूवयो होइ ॥५५॥
कुडिलसहावो पावप्पिग्रोजीवाण हिसणपरो ग्र।
देवगुरुपडिणीग्रो ग्रच्चत्त कुरूवग्रो होइ ॥५६॥

अर्थात्—जो पुरुष दण्डदडकी भाँति सरल स्वभावी होता है और धर्म में जिसका चित्त होताहै तथा जो मनुष्य जीवकी रक्षा करने में तत्पर होता है तथा देव गुरु व धर्मकी भक्ति करने में तत्पर रहता है वह जीव हे गौतम! रूपवान् होता है (५५) तथा जो जीव स्वभावसे कुटिल होता है तथा पापप्रिय होता है अर्थात् पापकर्म मे जिसकी रुचि होती है, जीवहिसा करने मे तत्पर तथा देव और गुरुके ऊपर द्वेष रखते और देवगुरुका मत्यनीक होता है वह पुरुष मर कर अत्यंत कुरूपवन्त होता है (५६) जिस प्रकार पाटण नगरमें देवसिंह सेठका पुत्र, जगसुन्दर

सर्व लोगोंका प्रिय ऐसा रूपवंत हुआ, और उसीका दूसरा भाई असुन्दर था वह काला, कुबडा दुर्भागी, दुःस्वर लबकंठ, बडे उदरवाला और कुरूप हुआ । इन दोनों भाइयों की कथा कहते हैं ।

"पाटण नगरमें देवसिंह नामक धनवंत सेठ रहता था, उसकी भार्याका नाम देवश्री था। वह सरल और स्नेहालु थी। उसने एकदिन अधिकांश रात्रि अतिक्रम हुइ तब एक आम्रवृक्षको, शाखा प्रतिशाखा व पुष्पसे भरा हुआ आकाशसे उतरता हुआ और अपने मुखमें प्रवेश करता हुआ स्वप्नमें देखा। फिर जाग्रत हो कर अपने पतिको स्वप्नकी बात कही। पतिने सुन कर स्त्रीको कहा कि तेरेको फलवंत गुणवंत आम्रवृक्षकी तरह अनेक जीवोंके आधारभूत ऐसा पुत्ररत्न होगा । यह सुनकर स्त्री हर्षवंत हुइ। अनुक्रमसे पूर्णदिन होने पर लक्षणवंत पुत्रका जन्म हुआ । इसके पिताने उत्सव मनाया, कुटुंबको जिमाया, वस्त्रादिकका दान दिया । गुणके अनुसार जगसुन्दर ऐसा उसका नाम रखा। सेठका वंछित कार्य सिद्ध हुआ । शालामें पढा, कलाए सीखा, विनय, विवेक, चातुर्य, औदार्य, गांभीर्य, धैर्यादिक गुणवंत हुआ। वह यौवनवयको प्राप्त हुआ तब अनेक कन्याओंके साथ

उसका पाणिग्रहण हुआ। जैनधर्मको अंगीकार करके वह देव गुरु संघकी भक्ति करने लगा, दान द पुण्य भंडार भरने लगा। दीन दुःखीका उद्धार करने लगा। इस भाँति कुमार अति पुण्यवंत हुआ।

एकदा दवथी ने शेषरात्रि में दवदग्ध वृक्ष मुख में प्रविष्ट होता हुआ स्वप्नमें देखा। पुरा स्वप्न जान कर भरतारको यह बात न कही। अनुक्रमसे काना, चीपदा, दताला, तुच्छ कर्णवाला, जिसकी छाती व पेट स्थूल, बाहु छोटी, जाँघ लंबी, शरीरमें रोम अधिक, दुर्भागी, दु स्वर ऐसे पुत्रका प्रसव हुआ। लोगों ने उसका रूप देख कर असुन्दर ऐसा नाम दिया। वह पुत्र मूर्ख धर्महीन हुआ। 'पाप में कूड़ा और कोड़ न कहे रूड़ा' ऐसा दुर्भागी हुआ। जिससे उसको कोइ कन्या देता नहीं द्रव्य देने लगा तिसपर भी कोइ कन्या देनेको कबूल न हुआ।

तब पिताने कहा कि हे वत्स! तूने पूर्वभवमें पुण्य नहीं किया है, जिससे तू ऐसा कुरूप हुआ है, और वाँछित नहीं पाता है; अत अब तू धर्मकरणी कर। ऐसी शिक्षा दी, तथापि धर्म करनेकी उसकी

इच्छा नहीं हुई।

एकदा उस नगरमें चार ज्ञानके धारक ऐसे सुव्रत नामक आचार्य आ कर समोसरे। उनके पास देवसिंह ने पुत्र सहित जा कर वंदना की। गुरुने धर्मोपदेश दिया, यह सुनकर जिस प्रकार मेघगर्जनासे मयूर हर्षित होता है उसी प्रकार सब हर्षित हुए। देशनानन्तर सेठने पूछा कि—हे भगवन्! मेरे दो पुत्र हैं, उनमें एक बड़ा पुत्र गुणवत सौभागी और पुण्यशाली हुआ और दूसरा लघुपुत्र दुष्ट दुर्भागी पापरुचि बुरा हुआ। अतः उन्होंने कैसे २ पुण्य पाप किये होंगे? सो कहिये।

गुरु कहने लगे कि 'हे सेठ' इसी नगरमें इस भवसे पूर्वके तीसरे भवमें एक जिनदत्त नामक वणिक् रहता था, वह सरल स्वभावी तथा जीवरक्षा करनेमें सर्वत्र प्रसिद्ध हुआ। इसके अलावा देव, गुरु और संघकी भक्ति करने में भी अग्रसर था जिसमे सबलोग उसकी प्रशंसा करने लगे। फिर उसी नगरमें एक शिवदेव नामक वणिक् महामिथ्यात्वी रहता था, वह देव, गुरु और संघके ऊपर द्वेष रख कर उनकी हसी करता था, मनमें कूड कपट रखता था, वह यद्यपि जिनदत्तका

मित्र था, तथापि जीवहिंसा करता था।

वह मिथ्यात्वी मर कर पहली नरकमें गया और जिनदत्त श्रावक मर कर पहले देवलोकमें देवता हुआ। वहाँ पर देवलोकके सुख भोग कर आयुपूर्ण करके तेरा जगसुन्दर नामक बड़ा पुत्र हुआ और शिवदत्त का जीव नरकसे निकल कर तेरा असुन्दर छोटा पुत्र हुआ है। वह देवगुरु के ऊपर द्वेष रखता था, निर्दयी था, जिससे कुरूप हुआ है। अब भी धर्मद्वेषी है, अतः बहुत संसार भ्रमण करेगा।' इस प्रकार गुरुमुखसे पूर्वभव सम्बन्धी वार्त्ता श्रवण करने से जगसुन्दर को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ, जिससे वह हर्षित हुआ। बहुत काल पर्यन्त श्रावकधर्म का आराधन कर अंतमें दीक्षा लेकर मोक्षसुख को प्राप्त हुआ।

अब सैंतालीसवीं पृच्छा का उत्तर एक गाथा के द्वारा कहते हैं।

जोजंतु दंडकसरज्जुखग्गकुं तेहिकुणइवेयणाओ।
सोपावइ निक्करुणोजायइ बहुवेयणापुरिसो॥५७

अर्थात्—जो पुरुष यत्र, लाठी, दंड, कोरा, रज्जु,

खड्ग, और माला आदिक शस्त्र के द्वारा अन्य जीवों को वेदना करे, वह पापी निर्दयी पुरुष जन्मान्तर में अति वेदना पाता है। (५७) जिस प्रकार मृग नामक गाँव के विजयराजा की मृगा राणी का लोढा नामक पुत्र था, वह पूर्व भव में अनेक गाँवों का अधिपति था तब उसने अनक लोगों को अत्यन्त दु खी किये; जिससे उसि भव में इसे जलोदर, कुष्टि प्रमुख सोलह महारोग उत्पन्न हुए। मर कर पहली नरक में गया। वहाँ से लोढा के भव में नपुसक हुआ। पाँचों इन्द्रियोंसे रहित अत्यन्त वेदना को सहता हुआ महा दु खी हुआ, जिसकी कथा कहते हैं —

" इसी भरतक्षेत्र में मृग ग्राम में विजय नामक राजा था। उसकी मृगावती नामक राणी थी। उनको ससार सुख भोगते हुए बहुत काल व्यतीत हुआ।

एकदा श्रीमहावीर तीर्थंकर विहार करते व भव्य जीवों को प्रतिबोध देते हुए श्रीगौतम स्वामी प्रमुख अनेक साधुओं के परिवार से परिवेष्टित वहाँ समोसरे। देवताने तीन गढ की रचना की व आगे फूलपगर भरे। बारह परिषद् मिल कर परमेश्वर की वानी श्रवण करने

लगी। इस समय एक अत्यन्त व कुष्टरोगी पुरुष जिसके हाथ, पैर, नाक, अंगुली मस्तक अङ्ग सब गल गये थे, जो दुःस्वर, दुर्भग हुआ था वह पुरुष लोगों से निंदाता हुआ यहाँ समोसरण में आया। उसे देखकर गौतमस्वामी ने परमेश्वर से पृच्छा की कि हे भगवन्! यह जीव किस अशुभकर्मके योग से महा दुःखी हुआ है? भगवानने कहा, इसने पूर्वभवमें अनेक पापकर्म किये हैं जिससे दुःखी हुआ है। पुनः गौतमस्वामी ने प्रश्न किया कि–हे महा राज! इस जीव से भी अधिक दुःखी ऐसा कोई जीव होगा कि जिसे देख कर लोग दुर्गच्छा करें, निंदा करें, निकाल देवे? भगवान बोले कि हे-गौतम! इसी गाँव के राजा का पुत्र जगत् में अत्यन्त दुःखी है, क्योंकि वह बधिर, पंगु व नपुंसक है। हाथ, पैर, आँख, कान, नाक, भृकुटी, मुख इनमेंसे कोइ भी अवयव उनको नहीं है। उसकी आठ नाडी अन्तर्गत बहती हैं, आठ नाडी बाहर बहती हैं, आठ नाडी रुधिर की और आठ राध की बहती हैं। महा दुर्गंधित उसका शरीर है, सदैव लोम के द्वारा आहार लेता है। वह यहाँ ही नरक का दुःख भोगता है।

यह श्रवण कर गौतमस्वामी को कौतुक उत्पन्न हुआ

सब उसे देखने के लिए कहने लगे कि — हे स्वामिन् ! यदि आपकी आज्ञा होवे तो मैं उसे देख आउं ? प्रभु ने आज्ञा दी । गौतमस्वामी राजा के घर आये । राजा राणी दोनों हर्षित हुए । राणी बोली — महाराज ! आज हमारे ऊपर अनुग्रह किया । श्रीगौतमजी मृगावती प्रति बोले कि मैं तुम्हारे पुत्रको देखना चाहता हु । तब राणी ने अपने चार पुत्र जो गुणवन्त थे उनको बुला कर गौतमस्वामी को बतलाये, श्रीगौतम ने धर्मलाभ दिया । फिर राणीने कहा कि - आज अनुग्रह किया । तब श्रीगौतम ने मृगावती को कहा कि तुम्हारा जो पुत्र शिला के सदृश है उसे देखने के लिए मैं आया हु । राणी बोली कि-हे भगवन् ! उस पुत्रको तो कोइ न देखे उस प्रकार हमने धरती के भीतर गुप्त रक्खा है, सो आपको कैसे मालुम हुआ ? श्रीगौतम बोलेकि-हमारे स्वामी श्रीमहावीर सर्वज्ञ हैं, उनके कहने से विदित हुआ । तब राणी ने कहा कि — हे भगवन् ! क्षण भर ठहरिये, भोजनके समय वस्त्रा-भरण को छोडकर छोटी गाडी में आहार डाल कर गुहा में मैं जाउंगी, तब आपको भी संग ले जा कर दिखाउंगी । तत्पश्चात् राणी गाडी ले कर श्री गौतम स्वामी के साथ भूमापे गइ । वहाँ गौतम स्वामिसे कहा कि — हे भगवन् !

यहाँ उग्र दुर्गन्ध है, अतः मुहपत्ति से मुख नाक बाँध कर भीतर आइये। वहाँ जाकर गुफा का द्वार खोला तब वहाँ पर ऐसी दुर्गन्ध आने लगी कि खाया हुआ अन्न भी बाहर निकल जावे। राणी ने दरी बिछा कर व उसके ऊपर आहार रख कर लोढा को ऊपर ले आई। उसने आहार संज्ञा से रोम के द्वारा आहार लेना शुरु किया, शीघ्रही वह आहार राध होकर निकलने लगा। ऐसा दु ख देख कर राणी को वंदन करके श्रीगौतमस्वामी श्रीमहावीर के पास लौट आए और कहने लगे कि जैसा दु ख आपने कहा, वैसा ही मैंने देखा, अब अब कहिये कि उसने ऐसा कौनसा बडा पाप किया होगा कि जिससे वह इतना दु खी हो रहा है ?

प्रभु कहने लगे कि,—हे गौतम ! शतद्वार नगर में धनपति राजाको विजयवर्द्धन नामक मन्त्री था, उसको पाँचसो गाँव मिले, जिसकी सम्हालके लिए एक राठोडको अधिकारी करके भेजा। वह राठोड रौद्र परिणामी, क्षुद्र बुद्धि व महा पापकर्मी था, वह पाँचसो गाँव की चिंता करता अधिक कर लेता, नये कर बैठाता, लोगों के शिर झूठे कलंक चढा कर व अन्याय करके उन्हें दण्डित करता उसने लोगों को निर्द्रव्य किये। कमती ज्यादा वात कर के

करके लोगोंको पीटना, बाँध कर महार करे, सतावे, इस मकार पाप कर्म करता रहा, जिससे इसी भवमें उसको कास, श्वास, ज्वर, दाह, कुक्षशूल, भगदर, हरस, अजीर्ण चक्षुवेदना, कर्णवेदना, पुठशूल, खस (पामा), कुष्टि जलादर, वेग और वायु-से सोलह महारोग उत्पन्न हुए जिनके द्वारा अति उपद्रव को प्राप्त होकर आर्त रौद्र ध्यान धर कर मृत्यु पा कर पहली नरक में गया । वहाँ छेदन, भेदन, ताप ताडनादि अनेक कष्ट सहन किये। फिर वहाँ से निकलकर विजयराजा का पुत्र हुआ है। और यह नपुसक, दु खी, अति वेदना से पीडित है। उसने पाप के उदय से एक भवमें अत्यन्त दु खका अनुभव किया है।"

अब ४४ वीं पृच्छा का उत्तर एक गाथा के द्वारा कहते हैं।

जो सत्तोवियाणत्तो मोआवेइ वघणाउ मरणाउ।
कारुण्णपुणाहियओ सो असुहा वेयणा तस्स॥४८

अर्थात्—जो पुरुष पीडा युक्त ऐसे जीवोंको साँकल बंधन रूप, वेदना से व मृत्यु से मुक्त कराता है जिसका

हृदय दया से पूर्ण है उस पुरुष को भवांतर में कोइ भी असुहामणी ऐसी वेदना नहीं होती (५८)

जिस प्रकार सुप्रतिष्ठित नगर में चंदन नामक सेठ मिथ्यात्वी था, पश्चात् वह दृढ प्रतिज्ञावंत श्रावक हुआ, उसका पुत्र जिनदत्त था, वह सबको अभीष्ट-वल्लभ हुआ। और अत्यन्त सुखी हुआ। उस चंदन सेठ और जिनदत्त की कथा कहते हैं —

"सुप्रतिष्ठित नगर में चंदन नामक व्यवहारिया रहता था, वह मिथ्यात्वी था परन्तु परिणाम से भद्रक था। उसकी वाहिणी नामक स्त्री थी। एकदा शान्त दान्त गुणों के धारक, धर्मवन्त, क्रियावन्त ऐसे दो साधु उसके घर को आये। वहाँ प्रासुक उपाश्रय जान व सेठकी आज्ञा लेकर उसमें रहे। उन साधुओं की संगति से सेठ तथा उसकी स्त्री ने जैनधर्म पाकर व्रत प्रत्याख्यान-नियम लिये तथा साधु के संसर्ग से सेठ की गोत्रदेवी भी सम्यक्दृष्टि वाली हुई।

अब वह साधु विहार करके अन्यत्र गए। सेठ अपनी स्त्री सहित पहले व्रत का आराधन करने लगा, परन्तु गृहस्थरूप वृक्ष का फल जो पुत्र, वह सेठ को नहीं

था जिससे सेठ सेठानी दोनों चिंतातुर रहते थे। पुत्र के लिए कुलदेवीकी आराधना करने के लिए कंकू, कपूर, चंदन और पुष्प के द्वारा कुलदेवी को पूजे, भूमिपर शयन करता, तपस्या करता। इस प्रकार करते हुए कुलदेवी प्रसन्न हुई। प्रत्यक्ष आकर कहने लगी कि हे सेठ! जो तू चाहे वह मैं तुझे दू। तब सेठने पुत्र की याचना की। गोत्रदेवीने चिंतन किया कि प्रथम तो इस सेठने साधु के समीप पहला व्रत अङ्गीकार किया है उसका यह यथार्थ पालन करता है या नहीं? धर्म में दृढ है या नहीं? जिसकी परीक्षा करु। ऐसा मन में विचार करके देवी कहने लगी कि हे सेठ! तू यदि जीने की इच्छा करता है तो एक जीव को मार कर मुझे बलिदान दे, तो मैं तेरे को पुत्र दूगी। और तू ऐसा न करेगा तो स्त्री भर तार दोनोंका कुशल नहीं है। यह श्रवण कर सेठ ने कहा कि - तू यह क्या कह रही है? क्योंकि जो अच्छा आदमी है वह किये हुए नियम का भंग कदापि नहीं करता, और मैंने तो प्राणातिपातका नियम लिया है। अतः पुत्र के बिना काम चल जायगा, परन्तु नियम का खंडन मैं नहीं करू गा। यह सुन कर देवी कोप कर के सेठ की स्त्री की चोटी पकड़ कर उसे तलवार से मारने

लगी। स्त्री भी रुदन करती हुई कहने लगी कि - अरे देवि ! मेरी रक्षा करो ! रक्षा करो ! ! सो भी देवी ने उस स्त्री का मस्तक काट डाला। पुन. सेठ को भी कहने लगी कि-तेरे को भी इसी प्रकार काट डालूगी। फिर कहा कि - अरे दुष्ट ! दुर्बुद्धि ! अपने कुलक्रमागत जीव घात करने की व बलि देने की जा प्रथा चली आती है उसका तूने नियम क्यों कर लिया ? अन अब पुत्र की बात दूर रही, परन्तु तेरे जीवनका भी संदेह है, इस वास्ते हठ-कदाग्रह का छोड़ और मुझे बलिदान दे। ऐसे देवीके कटु बचन सुने, तथापि सेठ क्षुभित नहीं हुआ और देवी के प्रति कहने लगा कि - मरना ता एक दफे है ही, अतएव पीछे मरना इसकी अपेक्षा पहले ही मार डाल, परन्तु मैं निर्दयी होकर जीव घात न करूंगा। ऐसी सेठ की दृढता देखकर देवी हर्षित हुई और सेठ को, उसकी स्त्री का जीवित दिखाकर, कहने लगी कि - हे सेठ जी ? तेरे का धन्य है, तू महा साहसिक और पुण्यवन्त है। तेरा पहला व्रत शुद्ध है या नहीं, उसकी मैंने परीक्षा की। ऐसा करते हुए- तेरा जो अपराध हुआ है उसकी तू क्षमा कर, तू मेरा सच्चा स्वधर्मी भाइ है,-अत मे तेरे पर उपकार करूगी। तू भी जिनेश्वर की भक्ति

कर, कि जिससे तेरे को योग्य पुत्र की प्राप्ति हो । उस का जिनदत्त नाम रखना। ऐसा कह कर गोत्रदेवी अ दृश्य हो गइ । कुछ दिन व्यतीत होने के बाद सेठ की स्त्री ने पुत्र को जन्म दिया । जिसकी बधाइ मिली, जिससे सेठ ने बड़ा महोत्सव करके उसका जिनदत्त ऐसा नाम रक्खा । शाला में पढ़कर सर्व कलाओं को सीखा । धर्म में निष्णात हुआ । यौवनवय में बड़े कुलकी योग्य कन्या के साथ शादी हुइ । वह जिनदत्त पिता को वल्लभ है, नीरोगी है, नित्यप्रति देव पूजा करता है ।

एकदा वन में ज्ञानी गुरु पधारे, सेठ ने पुत्र सहित उनके पास जाकर वंदना की । धर्मोपदेश श्रवण कर चंदन सेठ ने पृच्छा की कि हे भगवन । मेरा जिनदत्त पुत्र नीरोगी, महासुखी और सर्व का प्रीतिभाजन किस कर्म के योग से हुआ है ? सो कहिये । तब गुरु बोले कि मैं जो कहूं वह सावधान होकर सुनो । इसी नगर में धरणा नामक वणिक रहता था, उसके वहाँ जिनदत्त का जीव 'साधारण' इस नामका पुत्र था । वे पिता पुत्र दोनों दयावन्त थे, उसमें साधारण तो निष्पाप व्यवसाय करता था । मृग, छाग, तित्तर, चीडिया आदि को बन्धनमुक्त

कराता। बंधीवान जनोंको अपने घरका द्रव्य दे कर छुड़ाता था, मरते हुए प्राणीको छुड़ाता था। देवगुरु धर्मके संसर्गमें धर्मरंगमें भींजा हुआ रहता था, श्रीशत्रु जय तीर्थ की उसने यात्रा की। आयु पूर्ण करके देवलोक में वह देवता हुआ। जिनदें धरण का जीव तो तुम हो और साधारणका जीव तुम्हारे यहाँ जिनदत्त पुत्र हुआ है वह है। महा धनवन्त, नीरोगी व सुखी हुआ, यह सर्व पूर्व पुण्य का प्रभाव जानना। ऐसे गुरु की मुख की वाणी श्रवण कर दोनोंको जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। पूर्वक भव देखे। वैराग्य उत्पन्न हुआ, तब दीक्षा लेने को तत्पर हुए। गुरुने कहा कि—अब तुम्हारा आयुष्य बहुत बाकी है, और भोगावली कर्म भी बहुत हैं, इसलिए तुम सवि शेष श्रावकधर्म करो। यह सुन कर पिता पुत्र दोनों गुरुको वंदना करके घरको आये। अनेक प्रकार के पुण्य किये, सुकृत किये, दान दिये और व्रत लेकर दोनों देवलोक में देवता हुए। वहाँ से चव कर मनुष्य जन्म पा कर मोक्षमें जायेंगे।

अब पेंतालीसवीं पृच्छा का उत्तर एक गाथाके द्वारा कहते हैं।

जया मोहोदओ तिव्वो अन्नाणं खु महाभयं ।
कोमलं वियणिज्जं तु तया एगिंदियत्तणं ॥५९॥

भावार्थ —जब जीव को तीव्र मोह का उदय तथा अज्ञान यानि सम्यग्ज्ञानका अभाव होता है, तब वह पंचेंद्रिय जीव हो, तो भी उसको जिसमें महाभय है ऐसा, तथा तुच्छ, असार और वेदनीयरूप ऐसा एकेंद्रियत्व प्राप्त होता है। यह निश्चय जान लेना।

जिस प्रकार महीसार नगरमें मोहक नामक धनवन्त था, वह अत्यन्त कृपण हो कर लक्ष्मी व कुटुम्ब पर बहुत मूर्च्छा रखता था। मृत्यु पा कर वह एकेन्द्रियमें उत्पन्न हुआ। दीर्घकाल पर्यंत वह संसारमें रूलेगा। यहाँ मोहक गृहस्थकी कथा कहते हैं —

महीसार नगरमें मोहक नामक कोइ गृहस्थ रहता था। उसकी स्त्रीका नाम मोहिनी था। इसके पिता की उपार्जित लक्ष्मी बहुत थी। लक्ष्मी का मोह अपार था। रात्रिदिवस सावधान रहता था कि शायद मेरा धन कोइ लेजाय !। ऐसी चिन्ता करता हुआ गुप्त रीत्या जमीनके अन्दर निधान रखता। फिर वहाँ से उठाकर

दूसरे स्थानमें संचय किया। इस प्रकार लक्ष्मीको रखनेके लिये अनेक उपाय करता, रात्रि को सोता भी नहीं। अति कृपण हो कर सारादिन धनके लिए चिन्ता की किया करता 'पेटपर्ण भोजन भी लेता नहीं।, मोटे व गंदे कपड़े पहनता। किसी को दान भी नहीं देता, किसी का धन धीरता भी नहीं। लोभ के वश रिश्तेदारका व गुणवन्त का भी न पिछानता।

अब सेठ की स्त्री मोहिनीको पुत्र हुआ उसका लक्षण ऐसा नाम दिया।

अब वह पुत्र पिता से विपरीत गुणवाला हुआ। जगत्में कहावत है कि "जैसा बाप वैसा बेटा होता है। यह बात सत्य है, तथापि इस जगह तो पिता निर्विवेकी और कृपण होन पर भी पुत्र विवेकी और उदार हुआ। सात क्षेत्रमे धनका सद्व्यय करता, यह देखकर उसका पिता बहुत दु ख पा कर दुःखी होने लगा और कहने लगा कि हे वत्स। धन कुछ फोकट नहीं मिलता है। यह तो महा दु,खसे उपाजन किया हुआ है। यह श्रवण कर पुत्र कहने लगा कि हे पिता जी ' धन पुष्कल है तुम चिन्ता मत करो। तब पिताने कहा कि हे वत्स '

पानी से भरा हुआ सरोवर भी पशुओंके पी जानेसे सूक जाता है । तब पुत्रने कहा—जब तक अपना पुण्य प्रबल है, तब तक कदापि धन खुटेगा नहीं । उक्तं च —

जइ सुपुत्त तो धन कौं सचे,
जो कुपुत्त तो धन कौं संचे ।
अचलरिद्धि तो धन कौं सचे,
जो चल रिद्धि तो धन कौं सचे ॥१॥

लच्छी सहाव चवला
तत्थ चवल च रायसम्माण ।
जीवोवि तत्थ चवलो
उवयारविलवणा कीस ॥२॥

अत जिस प्रकार कूपका पानी, उपवनके पुष्प, और गौका दूध लेते हुए बहुत होता है वैसेही दान देते हुए लक्ष्मी वृद्धिगत होती है । इत्यादि पुत्रने समझाया, तथापि सेठ धन का मोह छोडता नहीं और मनमे यह सोचता रहा कि—यह मेरा पुत्र मूर्ख है ।

एकदा कमरेमें से चोर लोक धन ले गये यह सुनकर सेठको मूर्च्छा आगइ, वह रोने लगा, जिमने को भी

बैठा नहीं। तब पुत्रने कहा कि यह लक्ष्मी असार और चपल है, अतएव तुम भोजन करलो। इस प्रकार बहुत समझा कर भोजन कराया। दूसरी साल में सेठ की स्त्री मोहिनी मर गई। तब सेठ, स्त्री के मोहवश जिस प्रकार वज्र के प्रहार से मनुष्य दुःखी होता है इसी प्रकार अत्यन्त दुःखी हुआ। उसके गुणों को याद कर करके रुदन किया करता, जिमता भी नहीं। इस दुःखसे सेठ मर गया, परन्तु पुत्र सुज्ञ था, संसारका स्वरूप जानकर शोक नहीं करता और विचार करता कि मेरे पिताकी मृत्यु मोहके कारणसे हुई है, अतः जो मोह है वह बिना विष मृत्यु है। यह मोह त्रिदोषके बिना सन्निपात है, यदि मोह न हो तो जीव सर्वदा सुखी ही होता है। फिर विवेक जो है वह बिना सूर्यके प्रकाश है, दीपकके बिना उजाला है, रत्नके बिना कांति है, पुष्प के बिना फल है, अतः विवेक बड़ी बात है। ऐसा विचार रखता हुआ विवेकी हो कर धर्म करने लगा।

एकदा उस नगरमें श्रुतकेवली पधारे, उनको वंदना करके लक्षणने पूछा की कि महाराज! मेरे पिता मर कर कहाँ गये होंगे? गुरु बोले कि हे वत्स! तेरा पिता धन कुटुम्बका मोह करके अज्ञानके वश एकेन्द्रिय पृथ्वी-

काय में उत्पन्न हुआ है । फिर भी अपकाय, तेउकाय, वाउकाय और वनस्पति कायमें बहुत संसार भ्रमण करेगा । यह बात सुन कर वैराग्य पा कर लक्ष्मण ने दीक्षा ली। दीक्षा भली भाँति आराध कर स्वर्गादिक सुखों को प्राप्त किये।"

अब छैंतालीसवीं और सैंतालीसवीं पृच्छाका उत्तर कहते हैं।

नयधम्मोनय जीवो न य परलोगुत्ति न य कोइ ।
रिसिपिनोमन्नइमूढोतस्स थिरो होइ ससारी॥६०
धम्मोविअत्थि लोए अत्थि अधम्मोवि अत्थि सव्वन्नू ।
रिसिणोविअत्थिलोएजो मन्नइ सोप्प ससारो ॥

अर्थात्—धर्म नहीं है, जीव नहीं है, परलोक नही है, कोइ ऋषीश्वर नहीं है, इस प्रकार जो नास्तिक पुरुष मानता है उसके लिए संसार अत्यन्त बढ़ता है मोक्ष निकट नहीं होता ॥ ६० ॥

तथा लोक में धर्म है, अधर्म भी है, सर्वज्ञ भी है, और लोक में ऋषि भी है, इस प्रकार जो जीव माने वह

और बहुल संसारी नहीं होगा, अल्प संसारी होकर शीघ्र मोक्ष में जाता है ॥ ६१ ॥

जिस प्रकार राजगृही नगरी में एक श्रेष्ठि के पास शूर दूसरा वीर नामक दो शिष्यों ने शिक्षा पाई। इनमें से शूर तो धर्ममार्गका उत्थापन करने से यहां भी दुःखी हुआ। और फिर भी संसारमें भ्रमण करेगा। कुसङ्गतिके कारण से नास्तिकवादी हुआ, और वीर तो सद्गुरुकी सङ्गति से ज्ञानवान हुआ। धर्ममार्ग का स्थापन करता हुआ, यहां महत्व पा कर स्वल्प काल में मोक्ष पावेगा। इनकी कथा इस प्रकार की है।

"राजगृही नगरी में एक शूर व दूसरा वीर, ये दो गृहस्थ रहते थे। वे दोनों बाल्य अवस्था में एक ही गुरुके पास पढ़े, परन्तु पीछेसे शूरको नास्तिक लोगों की सङ्गति हुई। मनुष्य अपने समान स्वभाववाले मनुष्य के मिलनेसे आनन्द पाता है। जिससे दुःसङ्ग से बड़ा कदाग्रही हुआ, वह उद्धत होकर धर्म का उत्थापन करने लगा, अपनी बुद्धिमत्ता के आगे दूसरों को तुच्छवत् समझने लगा, लोग सुख के अर्थ की बात कहें तो उसे भी मानता नहीं।

एकदफे चार ज्ञान के धारक सुदत्त नामक गुरु पधारे उनको धर्मार्थी लोग और वीर आदि सर्व वंदन करने को गये, और शूर महा अहङ्कारी हो कर गुरु का माहात्म्य सुन कर मनमें ईर्ष्या करता हुआ वहाँ आया। गुरु को कहने लगा कि तुम लोगोंको ! फिजूल क्यों फुसलाते हो ? यदि तुम्हारेमें शक्ति होवे, तो मेरे साथ वाद करो। यह सुन कर गुरुजी का एक शिष्य उसे कहने लगा कि- 'अरे मूर्ख ! सर्वज्ञ के समान मेरे गुरुके साथ तू वाद कैसे कर सकेगा ? मैं ही तेरे अहङ्कार को नष्ट कर दूंगा। और तेरे को उत्तर दूंगा, परन्तु सभा, सभापति, वादी और प्रतिवादी, इन चारोंसे युक्त चतुरंग वाद कहा जाता है. अत: ऐसा चतुरंग वाद होवे तो मैं करूं । शूर ने भी मंजूर किया। फिर दूसरे दिन प्रात काल में चतुरंग का स्थापन होने से वाद करना प्रारम्भ किया।

शूर ने कहा ' शरीर में जीव ऐसी कोइ चीज नहीं है, और जीव नहीं है तो धर्म भी नहीं है, धर्म नहीं तो परलोक भी नहीं। जिस प्रकार गाँव के बिना सीम नहीं, स्त्री बिना पुत्र नहीं, उसी प्रकार जान लेना। ग्रा पृथ्वी, पाणी, आकाश, अग्नि और वायु, इन पाँच महा-

भूतों के सयोग से आत्मा होता है। जिस प्रकार धावडी महुडे, गुड और पानी से मदशक्ति उत्पन्न होती है वैसे ही जान लेना। आकाशकुसुमवत् और कुछ भी नहीं है। तो फिर जीव कहाँ है कि जिसको सुखी बनाने की वाँछा की जावे? वर्तमान कालके हस्तगत सुखको छोड कर सदेहयुक्त भविष्यत काल के सुख की वाँछा कौन करे?

तथा सुख दुःख सर्व कर्म के योग से होते हैं, यह बात भी अयुक्त है। क्योंकि एक पाषाण नित्य चंदन व पुष्प के द्वारा पुजा जाता है और एक पाषाण के ऊपर नित्य विष्टा डाली जाती है अब कहिये कि पाषाण ने कौनसा अच्छा या बुरा कर्म किया है? इसी प्रकार प्राणीमात्र के लिए भी सुख दुःख का कारण कुछ भी नहीं है। तप जप कष्ट क्रिया जो कुछ किये जाते हैं वे सब क्लेशरूप व्यर्थ ही समझने चाहिए।

अब शिष्य उक्त बातका उत्तर देता है। 'हे गुरु' तू जो कहता है कि जीव नहीं है तो मैं पूछता हु कि मैं सुखी हूं, मैं दुःखी हूं, इन बातोंका जानकार कौन है? चंदन लगाने से जैसे आनन्द होता है, और कंटक लगने

से दुःख होता है और उसके जाननेवाला तो जीवही है, यह बात तो प्रत्यक्ष देखी जाती है। यदि तेरे कथनानुसार जीव ही नहीं है तो पिता प्रमुख वडिलों के नाम कहना भी तेरे लिए व्यर्थ है। तथा कोप, प्रसाद, शोक, क्षुधा, तृषा, तृप्त, पीडित आदि बातों को अनुमान से जानते हैं अतएव जीव है। फिर तूने कहा कि—पंच महाभूत है वही आत्मा है यह भी असत्य है, क्योंकि पाँच भूत तो जड है, अत जो जड है वे चैतन्य कैसे हो सकते हैं ? वालुको पीलने से उसमें से तेल नहीं निकल सकता।'

तथा तूने जो शुभाशुभ कर्म कुछ भी नहीं है इस बातके ऊपर पाषाणका दृष्टान्त दिया वह भी अयुक्त है। क्योंकि एक सुखी एक दुःखी एक चाकर एक ठाकर। इत्यादि अच्छे बुरे जो द्वन्द हैं वे सब कर्मके योगसे ही हैं अतएव तप संयमरूप धर्म सफल है निष्फल नहीं। धर्म के फल यहाँ ही देखे जाते हैं इस वास्ते धर्म भी है परलोक भी है और सर्वज्ञ भी है। उनके कहे हुए शास्त्रके योगसे चन्द्र, सूर्य ग्रहण प्रमुख को जान सकते हैं अब तू कदाग्रह छोड।'

इत्यादि अनेक उत्तर प्रत्युत्तर दे कर सूरकी निरुत्तर

किया। तब राजाने शिष्य की प्रशंसा की और शूरको राजाने कहा कि 'हे पापी ! तू पिताको भी नहीं मानता है और सब को उत्थापता है, ऐसा कह कर राजाने रोष ला कर शूर को पकडा। उसको शिष्यने छुडाया। तब राजा फिर कहने लगा कि—देखो इस शिष्यमें दया का गुण कैसा है ? यह निरीह है, सच्चा सदाचार कहता है। ऐसा कह कर शूर को अपने नगर में से निकाल दिया और दूसरा जो वीर था वह तो सन्मार्ग में चलता हुआ, धर्म की स्थापना करता हुआ तथा पुण्य है, पाप है, वीतराग देव है, सुसाधु गुरु है इत्यादि कहता था। उसे राजा ने सम्मानित किया। मर कर वह देवता होगा। अन्त में मोक्ष सुख को प्राप्त करेगा। और शूर नास्तिकवादी होकर संसार में बहुत काल पर्यंत भ्रमण करेगा।

अब उड़तालीसवीं पृच्छाका उत्तर एक गाथा के द्वारा कहते हैं।

जोनिम्मलनाणचरित्तदसणेहिविभूसिअसरीरो।
सो संसारं तरिउ सिद्धिपुर पावए पुरिसो ॥६२॥

अर्थात्— जो पुरुष निर्मल ज्ञान, चारित्र और दर्श-नके द्वारा विभूषित शरीरवाला होता है वह पुरुष संसार समुद्रका पार पा कर मोक्ष सुख पावेगा (६२) जिस प्रकार अभयकुमार ज्ञानादिकका आराधन करके मोक्ष सुख पायेंगे। उसकी कथा इस प्रकार है'—

"मगध देशमें श्रेणिक राजा राज्य करता था। उसका पुत्र एवं प्रधान अभयकुमार था। वह चार बुद्धिका नि-धान था, अपने पिता के राज्य को वृद्धिगत करता था। उसे राजा राज्य देने लगा, परन्तु उसने पापके भय से राज्यका स्वीकार नही किया।

एकदा श्रीवीरप्रभु आकर समोसरे। उनको अभ यकुमारने वंदना करके पूछा कि—हे स्वामिन! अन्तिम राजर्षि कौन होगा? प्रभुने कहा उदायिन राजा होगा।

अब, श्रेणिक राज्य को छोड कर दीक्षा नही लेता था जिससे अभयकुमार सोचने लगा कि यदि मैं मेरे पिताके आग्रहसे राज्य लूंगा तो मेरे से भी दीक्षा नहीं ली जा सकेगी, अतः मेरे को राज्यसे कोइ मतलब नहीं है, मगर मेरे पिताने मेरेसे जो यह वचन लिया है कि

मेरी आज्ञाके बिना अन्यत्र कहीं न जाना । उसका क्या उपाय करना उसकी चिन्ता अभयकुमार करने लगा।

इस अर्सेमें माघ महीने के किसी दिनका सन्ध्याके समय चलणा राणीने सरोवरके तट पर एक साधुको काउसग्ग ध्यानमें रहा हुआ देखा। तब राणी विचार करने लगी कि यह ऋषि रात्रिके समय ठंडी कैसे सहन करेगा? इसी विचारमें घर आ कर रात्रिको शय्यामें सो गई। वहाँ अपना हाथ खुल्ला (सोडके बाहर) रह गया, और जागृत हो कर देखा तो हाथ ठंडा लगा, उस समय साधु याद आ गया।

अब श्रेणिक राजा सोचने लगा कि मेरा अन्तेउर मुझे अनुकूल नहीं है। शप रात्रि को अभयकुमारने आकर जुहार किया, उसे श्रेणिकने कहा कि अन्तेउरको जला दो। एसा कह कर स्वयं राजा श्रीवीर भगवतको पूछने के लिए गया। पीछेसे अभयकुमारने विचार किया कि अन्तउरमें तो चेलणादिक महासतियाँ हैं, अतः आग लगाना उचित नहीं। एसा विचार कर एक पुराणी हस्तीशालाको आग लगा कर अभयकुमार श्रीवीरप्रभुके समोसरण प्रति चला। वहाँ श्रेणिक ने श्रीवीर प्रभु को

पूछा कि मेरी स्त्री चेलणा सती है किंवा असती ? प्रभुने कहा कि चेडा महाराजाकी सातों पुत्रीयों सती हैं । यह श्रवण कर श्रेणिक वापिस लौटा, गाँवमें आग जलती हुई देखी । रास्तेमें अभयकुमार मिला, उसे राजाने पूछा कि अन्तेउर को आग लगाई ? अभयकुमारने कहा कि हाँ स्वामी ! आग लगाई । तब श्रेणिकने कोप करके कहा कि तू क्यों न जल गया ? अब तू मेरे से दूर जा । तब अभयकुमारने कहा कि मैं आपका यही आदेश चाहता था । शीतल आगमें प्रविष्ट होकर मैं कार्यसाधन करूंगा । ऐसा कह कर समोसरणमें जा कर श्रीवीरप्रभुके पास दीक्षा ली । राजा श्रेणिक फिर समोसरण प्रति चला । श्रेणिक के आने के पहिले ही अभयकुमार दीक्षा ले कर साधु समुदायमें जा कर बैठे थे । उनके पास जा कर राजाने वंदना की, अपराध की क्षमा याची । अभयकुमार ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप पाल कर सर्वार्थसिद्ध विमानमें पहुचे । एकावतारी हो कर मोक्षमें जायेंगे । ”

इस प्रकार ४८ पृच्छाके उत्तर परमेश्वरने कहे ।

जं गोयमेण पुट्ठं तं कहियं जिणवरेण वीरेण ।
भव्वा भावेइ सया धम्माधम्मफलं पयडं ॥६३॥

अडयालीसापुच्छो तरेहि गाहाण हीइचउसट्ठी।
सखेवेणं भणिया गोयमपुच्छा महत्थावि ॥६४॥

अर्थात्—जो कुछ पुण्यपाप फल श्रीगौतमस्वामीने पूछे, उनके उत्तर श्रीमहावीर स्वामीने दिये। वह हे भव्यजनो! तुम भावसे सदैव धर्म अधर्मके फलको प्रकट विचारो धर्म, आराधो (६३) अब इस शास्त्रमें प्रश्नो त्तरकी गाथा की सख्या कहते हैं। ४८ प्रश्नोत्तरोंकी गाथाएं हुई। ऐसा श्रीगौतमपृच्छा रूप जो ग्रन्थ यद्यपि वह महा अर्थ रूप है तथापि यहाँ सक्षेपसे कहा (६४)

गौतमपृच्छा समाप्ता।